# सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

**श्री सिद्धगुफा प्रकाशन** सवाँई- 283202 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशन तिथि : 01.08.2018 मूल्य : एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 360/-

वर्ष : 51 : अंक : 5 अगस्त 2018

# समय की ज्वलंत आवश्यकता

"हममें से कुछ लोग इस सांसारिक प्रपंच से अलग रहें और केवल परमात्मा के लिये जीवित रहें। संसार के लिये धर्म की रक्षा करें। यदि वैराग्य धारण करो तो दृढ़तापूर्वक डटे रहो। यदि इस युद्ध में सैकड़ों गिर जायें तो भी पताका को थामे रहो और बढ़ते जाओ। चिंता नहीं कौन गिरता है? सत्य संकल्प के पीछे भगवान स्वयं विद्यमान है। जो गिरे वह पताका को दूसरे हाथों में सौंप दे और तब वह कभी नहीं गिर सकेगी। जीवन की क्षुद्र मर्यादाओं में बंधे ये बेचारे गृहस्थ कर ही कितना सकते हैं? यह सन्यासियों का कार्य है, शिव के गणों का कार्य है कि आकाश को 'हर! हर!' के निनाद से गुंजायमान कर दे।

मेरी समस्त भावी आशा उन युवकों में केन्द्रित है– जो चरित्रवान हों, बुद्धिमान हों, लोकसेवा के हेतु सर्वस्व त्यागी और आज्ञापालक हों, जो मेरे विचारों को क्रियान्वित करने के लिये और इस प्रकार अपने तथा देश के व्यापक कल्याण के हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकें। यदि मुझे नचिकेता की श्रद्धा से सम्पन्न केवल दस या बारह युवक मिल जायें तो मैं इस देश के विचारों और कार्यों को एक नयी दिशा में मोड़ सकता हूँ।

जिनमें मुझे कुछ अधिक क्षमतायें दीख पड़ती हैं उनमें से कुछ विवाह के बंधन में बंध गये हैं। कुछ ने स्वयं को मान प्रतिष्ठा या धन कमाने के लिए बेच डाला है और कुछ शरीर से दुर्बल हैं। शेष, जिनकी संख्या अधिक है, किसी उच्च भाव को ग्रहण करने में ही समर्थ नहीं है।

मैं चाहता हूँ– लौह पेशियाँ और इस्पात के स्नायु, जिनके भीतर उसी धातु का बना मानस रहता है, जिसका वज्र बनाया जाता है। शक्ति, पौरुष, क्षात्रवीर्य, ब्रह्मतेज। हमारे सुन्दर होनहार युवकों के पास ये सब चीजें हैं– यदि केवल उन्हें उस क्रूरता की वेदी पर– जिसे वे विवाह करते हैं– बलि न किया जाए। हे भगवान मेरी पुकार सुनो– कुछ को इस विवाह से बचा रहने दो। उन्हें केवल ईश्वर के लिए जीने दो, ताकि वे दुनिया के लिए धर्म की रक्षा कर सकें। निस्सन्देह क्योंकि ईश्वरीय इच्छा से इन्हीं लड़कों में से कुछ समय बाद आध्यात्मिकता और कर्म–शक्ति के महान् पुंज उदित होंगे जो भविष्य में मेरे विचारों को क्रियान्वित करेंगे।"

# सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 51
अंक 5

अगस्त
2018


ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विपदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्।।

–श्वेताश्वतरोपनिषद् 10/10/38

## अर्थात्

भगवन् ! मेरी वाणी आपके गुणकार्तन में लगी रहे। मेरे कान आपकी लीला कथा सुनने में संलग्न रहें। मेरे हाथ आपकी सेवा के कार्य में और मन आपके चरणों के चिन्तन में तत्पर रहे। मेरा मस्तक आपके निवास भूत जगत को नमस्कार करने के लिए झुका रहे औ मेरी आखें आपके स्वरुपभूत संतजनों के दर्शन में निरत रहे।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

□□□ संस्थापक : □□□
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

# इस अंक में ...

| | | |
|---|---|---|
| 1. | विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज | 3 |
| 2. | सम्पादकीय | 13 |
| 3. | योग साधना के अन्तर्गत आने वाली..... – डॉ. जे.पी. शर्मा | 15 |
| 4. | बहिन श्री द्रौपदी देवी जी– एक साधक | 19 |
| 5. | योगिनी रामरती – एक साधक | 23 |
| 6. | दिव्य आरती (अर्थ सहित) | 28 |
| 7. | अवधूत योगी श्री तैलंग स्वामी– स्वामी श्रीदत्त योगेश्वर देवतीर्थ | 30 |
| 8. | जप विज्ञान – अनिल दुबे | 38 |
| 9. | योग–आसन | 40 |
| 10. | क्यों न खाए प्याज और लहसुन – मनमोहन कृष्ण त्रिखा | 40 |

| | | |
|---|---|---|
| एक प्रति | : रु. | 20.00 |
| वार्षिक शुल्क | : रु. | 180.00 |
| द्विवार्षिक | : रु. | 360.00 |
| आजीवन | : रु. | 1000.00 |

# श्री प्रभु जी का अमोघ संकल्प एवं करुणा कृपायें

**योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज**

देखो! मैं आज तुम्हें यह समझाना चाहता हूँ कि महापुरुषों के मन कितना काम किया करते हैं। जिस समय भगवान राम के चरित्र और श्रीकृष्ण के चरित्रों को हम पढ़ते हैं तो उसमें इस प्रकार की बहुत सी बातें मिलती हैं कि संकल्प हुआ सत्युग के समय में और उसका भुगतान द्वापर में हो रहा है। शूर्पणखा भगवान राम के पास गई। उनके सुन्दर रूप को देखकर उस के मन में थोड़ी सी भावना बन गई कि राम हमारे पति हों, इनके साथ हमारी शादी होनी चाहिए। किन्तु राम की पत्नी बनने के लिए उसको कितनी कुर्बानी की आवश्यकता थी, इसका उस बेचारी राक्षसी को क्या ज्ञान था? उसने तो अपने जीवन में निरामिष भोजन किया था तामस देह था उसका, जंगलों में ऋषि मुनियों को सताया करती थी। किन्तु संकल्प राम के प्रति बना कि राम मेरे पति हों और श्री राम ने उसके हृदय की चाह को देखा। यद्यपि वे पूर्ण हैं, आप्त काम हैं, उनमें कमी नहीं है किसी प्रकार की, किन्तु यहाँ एक राक्षसी का संकल्प देखा, जो मन में भावना बनी थी। श्री राम ने सोच लिया संस्कार बन गया है किसी समय इसका भुगतान होना चाहिये। सुनते हैं कुब्जा वही शूर्पणखा थी जिसका कृष्णावतार में भगवान ने उद्धार किया। उसका संकल्प था और इस प्रकार से उसका भुगतान हुआ। श्री राम को जनकपुर में सीता की सखियों ने देखा। उनके मन में भी यह संकल्प बना कि ये हमारे पति होते। उनके इस संस्कार का भुगतान द्वापर में हुआ। वे सखियाँ ही गोपियों के रूप में आईं और भगवान का सान्निध्य उन्हें मिला।

इस समय मुझे श्री प्रभु जी के चरणों का स्मरण आ रहा है उनसे सम्बन्धित एक घटना याद आ रही है। लाहौर में एक विरक्त महात्मा रहते थे उनका नाम था शहनशाह। वे अनुभवी सन्त थे। उनकी एक पुस्तक मिला करती है ''पैगामे शहनशाह''। पुस्तक के ऊपर एक शेर लिखा रहता है—

''चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बे परवाह
जिसको कछु न चाहिये सो जग शहनशाह''

भावार्थ है कि जिस के मन में कोई कामना नहीं है वह बादशाह है, शहनशाह है। बात भी ठीक है। हम जितने कामनाओं के पीछे लगते हैं उतने ही हम दरिद्र हैं, कंगाल हैं पराधीन हैं, दूसरों के नाच नचाने पर नाचते हैं। एक संस्कार भुगतान के लिये सारे कर्म करने पड़ते हैं। लाहौर के महात्मा शहनशाह के स्मरण आने पर एक कारण था। हमारे बड़े गुरुभाई मुल्खराज थे। श्री प्रभु जी ने उन पर विशेष कृपा की थी। वह बाजार में तुरीय स्थिति में ध्यान मग्न हुये निकल रहे थे। महात्मा शहनशाह ने उन्हें बाजार में निकलते देखा। उन्हें देखकर उन्होंने कहा–''बेटा! ठहर जाओ!'' उन्होंने रुक कर कहा–महाराज! क्या आज्ञा है? महात्मा ने कहा–तू कृतार्थ हो रहा है, निहाल हो रहा है। तुम्हें जो सद्गुरु मिल गये हैं वे तुम्हें परिपूर्णतम स्थिति के अन्दर छोड़ेंगे। तुम्हें वे मिल गये हैं जो सब प्रकार से परिपूर्ण और अपूर्णों को पूर्ण बनाने वाले हैं।

यहाँ गुफा पर पहले एक श्लोक लिखा रहता था, आजकल नहीं है। वह श्लोक था **''यस्य प्रसादात् पतितास्सुपावना भवन्ति संसार सुतारणा शिवा: योगेश्वराणाम् परमेश्वरं हरिं श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये''** श्लोक का अर्थ यह है कि जिनकी कृपा के कण को पाकर के, कृपा प्रसाद को पाकर के अत्यन्त महापतित भी अत्यन्त पवित्र हो जाते हैं और वह संसार को तारने वाले बन गये। योगियों के ईश्वर उन परमेश्वर श्री रामलाल की मैं शरण लेता हूँ।

महात्मा शहनशाह ने कहा–तुम बहुत बड़ी जगह पहुँच गये हो, वहाँ तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण ही कल्याण है। इस प्रकार दो चार मिनट बात करने के पश्चात् महात्मा जी कहने लगे–''किसी समय मन में संकल्प बन गया था कि तुम्हें फिर मिलेंगे। इस संकल्प के भुगतान का समय अभी तक नहीं आया था। उसके भुगतान का समय अब आया इसलिये मैंने तुम्हें बुलाकर बातें की हैं।'' कभी किसी जन्म में संकल्प बना। संकल्प ज्यों का त्यों कायम रहा। वह संकल्प छिन्न–भिन्न नहीं हुआ। हमारे तुम्हारे साधारण सांसारिक लोगों के जो संकल्प हैं वे रात दिन बनते बिगड़ते रहते हैं। मैं तुम्हें केवल मात्र एक बात समझाना चाहता हूँ कि महापुरुषों के मन में बना हुआ संकल्प कभी बिगड़ने वाला संकल्प नहीं होता। उनके मन में यदि आ जाये–वह यह सोच लें कि ''यह मेरा है'' तो उसे दुनियाँ में कोई छीन नहीं सकता, दुनियाँ में उसका कहीं बाल बाँका नहीं हो सकता। वह 'मेरेपन' की जो मुहर उन्होंने लगा ली है वह उनका शुद्ध संकल्प है। क्योंकि वे सत्य संकल्प हैं।

मैंने कभी–कभी तुम्हें सत्य की महिमा बतलाते हुये समझाया है कि यदि एक मनुष्य साल

छः महीने लगातार मन, वचन और कर्म से सत्य का आचरण करने वाला बन जाये तो वह भी सत्य संकल्प बन जाता है। मन, वचन और कर्म से सत्य का आचरण करने वाले का एक लक्षण होता है वह है–''**मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्**'' अर्थात् मन में वही बात, वाणी में वही बात और कर्म में भी वही बात! ये तीनों चीजें एक रूप में महात्माओं की हुआ करती हैं। मन में आया कि मैं एक हजार व्यक्तियों को भोजन कराऊँ। उसके बाद क्रियात्मक रूप में भी एक हजार व्यक्ति का भोजन करा दिया तो यह सत्य संकल्प हुआ। मन में विचार आया हजार व्यक्ति का भोजन करायेंगे। किन्तु वाणी से कह दिया बीस पच्चीस का भोजन करायेंगे और जब भोजन कराने का मौका आया तो वह भी छोड़ दिया इसको सत्य संकल्प नहीं कहते हैं। जो दिन भर में हजार्यें प्रकार का झूठ बोला करता है। जिसकी वाणी में सत्य का लवलेश नहीं होता, पल में कोई बात कही, दूसरे ही पल उसे बदल दिया तो समझ लेना चाहिए कि इसका विवेक नष्ट हो गया है और ऐसे व्यक्ति के संकल्प कभी सत्य नहीं हुआ करते। अस्तु!

इस धाम (श्री सिद्ध गुफा सवाई) को देखकर श्री प्रभु जी के चरण कमलों का मुझे स्मरण आया और उसका कारण था कि हम लोग इतने इकट्ठे हुये–हुये हैं और श्री प्रभु जी की महिमा गा रहे हैं उनका गुणानुवाद कर रहे हैं। वे सर्वसमर्थ योगेश्वर हैं। उनके मन में संकल्प बना होगा, कोई विचार होगा कि इस प्रकार से चारों तरफ से हमारे बच्चे इकट्ठे होंगे और वे गुणानुवाद गायेंगे। और इनका इतना इतना भुगतान हमने देना है। इतना इतना करना है। वे योगेश्वर हैं और कृपा से उनका भुगतान कर रहे हैं। मैं कहना क्या चाहता हूँ? मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह स्वर्ण अवसर हम सब को मिला हुआ है। देखो! पहली बात तो यह है संसार के अन्दर योगनिष्ठ बनना, योग के विचार पैदा होना यह बहुत ऊँची चीज है और यह भाग्यवान व्यक्ति के अन्दर हुआ करता है।

कई बार लोग मुझ से प्रश्न किया करते हैं कि परमात्मा की ओर चलने का सबसे श्रेष्ठ रास्ता कौन सा है? वैसे परमात्मा की ओर जाने के तीन मार्ग संसार में प्रचलित हैं वे हैं भक्ति मार्ग, ज्ञान मार्ग और योग मार्ग। कोई मुझ से पूछता है इनमें से कौन सा उत्तम है? उनको मैं एक ही जवाब दिया करता हूँ कि भई! उत्तम–अनुत्तम की बात तो तुम सोच लो किन्तु मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ वह यह कि भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र ने कौन–सा मार्ग माना। भगवान कृष्ण चन्द्र को जगह जगह पर किस नाम से सम्बोधित किया गया है। उनको किसी ने पुकारा है तो किस नाम से पुकारा है? मैं ही उसका उत्तर देता हूँ! देखो! एक बार भगवान यमुना तट पर गये। वहाँ काली देह पर विषैला जल पीकर ग्वाल बाल और गौयें मर गईं। भगवान् ने देखा–यह सब मरे पड़े हैं–तब क्या हुआ?

**''वीक्ष्य तान वैतथा भूतान कृष्णो योगेश्वरेश्वरः**
**ईक्षया मृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत्''**

अर्थात् योगेश्वरों के भी ईश्वर कृष्ण ने उन सब को इस प्रकार मरा हुआ जानकर अपनी अमृत वर्षिणी आँखों से देखकर उन सब को जीवित कर दिया। क्या नाम मिला भगवान कृष्ण को यहाँ पर। यहाँ पर उनको योगेश्वरेश्वर नाम से कहा गया है। इसी प्रकार से एक बार वृन्दावन में आग लग गई। सभी बृजवासी करुण क्रन्दन करने लगे–महाराज! हमें बचा लो। भगवान कृष्ण ने कहा–तुम सब अपनी आँखें बन्द कर लो। बृजवासियों ने आँखें बन्द कर लीं।

**तथेति मिलिताक्षेषु भगवानग्नि मुल्वणम्।**
**पीत्वा मुखेनतान् कृच्छ्राद् योगाधीशो व्यमोचयत्।**

अर्थात् योगाधीश श्रीकृष्ण ने उस अग्नि को अपने मुख से पी लिया और बृजवासियों को संकट से छुड़ा लिया। यहाँ पर भी योगाधीश सम्बोधन तो आया है किन्तु ज्ञानाधीश सम्बोधन नहीं आया। इसी प्रकार से जहाँ–जहाँ भी उनके चरित्र आते हैं सभी जगह पर योगेश्वर योगा–धीश आदि शब्द ही उनके लिये प्रयुक्त हुये हैं।

जब द्रोपदी का चीर खींचा जा रहा था तब द्रोपदी ने भगवान कृष्ण को पुकारते हुये कहा–**'कृष्ण कृष्ण महायोगिन् कृष्णगोपीजन प्रिय।'** हे, गोपीजन प्रिय महायोगी कृष्ण! आप कौरवों के समुद्र में पड़ी हुई मुझे क्यों नहीं देख रहे हो। भगवान ने अर्जुन को गीता सुनाई अर्जुन ने कहा महाराज! आप जो कुछ कह रहे थे वह बिल्कुल ठीक है किन्तु मैं आप के योगेश्वर्य को देखना चहता हूँ। यदि आप मुझे इसका अधिकारी समझते हों तो हे योगेश्वर! मुझे अपने अविनाशी रूप का दर्शन कराइये। **''योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्''** यहाँ पर अर्जुन ने भी योगेश्वर ही कहा, ज्ञानेश्वर नहीं।

ज्ञान और योग दो ही शब्द हैं। ज्ञानेश्वर लगाया जा सकता था किन्तु सारी गीता को उठा कर देखो, भागवत् को देख लो, महाभारत को देख लो भगवान् कृष्ण के लिये कहीं पर भी ज्ञानेश्वर या भक्तेश्वर का सम्बोधन नहीं हुआ है। भगवान् ने जब अपना विश्वरूप दिखा दिया तो अर्जुन ने कहा–मैंने प्रसन्न होकर अपने आत्मयोग से–योग भक्ति के प्रभाव से इस परम तेजोमय रूप को तुझे दिखाया है। यहाँ पर भी भगवान् कह सकते थे–**''परं रूपं दर्शितं आत्मज्ञानात्''** किन्तु भगवान ने आत्म ज्ञानात् न कह कर के आत्म योगात् ही कहा है। इस प्रकार से सर्वत्र भगवान को योगेश्वर, योगाधीश, योगयोगेश्वर आदि नामों से ही पुकारा है। इससे स्पष्ट है कि भगवान को योग ही प्यारा है। इसलिये भगवान ने हम सब को योगी बनने की आज्ञा दी है। अस्तु।

मेरे मन के अन्दर एक भावना बनी हुई है और वह भावना मैं तुम्हारे मन के अन्दर बैठा देना चाहता हूँ। क्यों बिठा देना चाहता हूँ? इसलिये कि तुम इस समय उस तेज के अन्दर बैठे हो। तुम्हारे सिरों पर, चेहरों पर एक प्रकाश व्यापक हो रहा है और तुम्हें वह प्रकाश छू रहा है। उस प्रकाश के अन्दर तुम पवित्र हो रहे हो। मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि तुम किसके संकल्प में बैठे हो। किसके संकल्प में तुम अपने आप को दे चुके हो। मेरा कहना यह है कि महापुरुषों का संकल्प कभी मिथ्या नहीं हुआ करता। वे योग योगेश्वर करण कारण श्री प्रभु जी, जो ज्ञान और योग के मूल कारण हैं उनके मन में यह संकल्प आना कि ये हमारे बच्चे हैं, इनका कल्याण हो। इस प्रकार उनके मन में तुम सब जम चुके हो और उस जम चुकने का कारण है कि तुम लोग प्रेम में विभोर होकर गीत गाते हो, संकीर्तन करते हो, और उनके चरणों से प्रेम करते हो, उनका आवाह्न करते हो, बुलाते हो। यदि हृदय के अन्दर प्रकाश नहीं गया होता तो ये गीत और भाव नहीं निकलते। इसलिये उनके मन के अन्दर तुम्हारा अधिष्ठान हो चुका है, उनके मन के अन्दर समा चुके हो। उनके मन के अन्दर समाना बहुत बड़ा महत्व रखता है। बस! यही समझाने के लिए तुम्हें सब बातें कह रहा हूँ। हाँ, मैं तुम्हें बता रहा था कि भगवान् कृष्ण को योग ही प्यारा है।

रही भक्ति मार्ग की बात! भक्ति का अर्थ है–''**ईश्वरे परानुरक्तिः भक्ति**'' ईश्वर में परम अनुराग होना भक्ति है। भक्ति से परमात्मज्ञान होता है। गीता में भगवान् ने कहा है–

**भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वत:।**
**ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।**

अर्थात् भक्ति के द्वारा मैं जितना जो भी हूँ इस को मेरा भक्त जान लिया करता है इस तरह भली प्रकार तत्व से जानने के बाद मुझ में प्रवेश करता है। भक्ति की बात पर मुझे एक घटना याद आई। मेरा एक छोटा गुरु भाई था। ऋषिकेश में श्री प्रभु जी के चरणों में रहता था। वह भगवान शंकर, भगवान विष्णु आदि के चित्रों को देखकर कहता था यह क्या भगवान है? इनके साथ तो स्त्रियाँ हैं, यह कैसे योगेश्वर हैं? इस प्रकार से मजाक किया करता था। मैं श्री वृन्दावन से बीच–बीच में ऋषिकेश आता रहता था। मेरा वह गुरु भाई हम लोगों को चिढ़ाने के लिये राधा कृष्ण के चित्र को उल्टा कर दिया करता था। एक दिन सायंकाल श्री प्रभु जी अपने आसन पर विराजमान थे। लगभग 7 बजे का समय था। नरसिंह मूर्ति की हरकतों को देखकर प्रभु जी कहने लगे–नरसिंह बस! अति हो गई ''**अति सर्वत्र वर्जयेत्**'! क्यों उल्टा कर रखा है इन स्वरूपों को? उसने मजाक में कह दिया–इनको कब्ज हो गई है शीर्षासन कराकर कब्ज तोड़ रहा हूँ। श्री प्रभु जी कहने लगे–तू आदि शक्ति का अपमान करता है। राधा के नाम पर

अपशब्द कहता है। नरसिंह! होश में आ जा! नहीं तो इसका नतीजा तुझे भोगना पड़ेगा। उसने परवाह नहीं की। **''जैसी होय होतब्यता तैसी उपजे बुद्धि''** जिस प्रकार की होनहार होनी होती है बुद्धि वैसी हो जाती है। कहने लगा–नहीं, प्रभु जी! मैंने कुछ नहीं किया है बस कब्ज तोड़ने के लिये थोड़ा सा शीर्षासन कराया है फिर हटा दूँगा। श्री प्रभु जी के मुख से क्या निकला। 'अच्छा! नरसिंह यह बात है। अच्छी बात! अब जिस राधा को तू उल्टा सीधा कहता है शीर्षासन कराता है, थोड़े दिन के अन्दर तू इनके लिये रोता फिरेगा। अब तुम्हें इन के लिये विलाप करना पड़ेगा।'' इसी के फलस्वरूप नरसिंह मूर्ति जी कुछ दिन बाद ही वृन्दावन चले गये। वहाँ किसी वैष्णव महात्मा से दीक्षा ले ली। यद्यपि यह काम गलत हुआ था। मैं दस बीस दिन बाद वृन्दावन गया। मुझ से उसका प्रेम था। श्री प्रभु जी ने आज्ञा दी थी कि तुम वृन्दावन में जाकर नरसिंह मूर्ति के लिये जो कुछ सोचोगे वह हो जायेगा। मैंने जो कुछ सोचा उनकी कृपा से वैसा ही हुआ। उसकी हालत क्या देखी, सखी वेश में था वह। कहने लगा मुझ पर तो श्री जी कृपा हो गई है। यहाँ सेवा कुंज में झाड़ू लगाने को मिल जाये, बस बड़े भाग्य की बात है। फिर कहने लगा–कृष्ण जी तो अपना नाम योगियों में लिखाते हैं किन्तु उनका भी कभी कुछ होगा तो श्री जी की कृपा व इच्छा से होगा। बड़ा दुःख हुआ उसकी बातों को सुनकर।' **ऐसा कह रहा है यह'** श्री कृष्ण तो राधा से अभिन्न हैं। राधा के ईश्वर के लिये कह रहा है ऐसा करना पड़ेगा वैसा करना पड़ेगा बुद्धि पर पर्दा पड़ गया है श्री कृष्ण के लिये ऐसे कह रहा है। भगवान कृष्ण किसी के भक्त नहीं हो सकते। न ही कहीं पर उनके लिये भक्तेश्वर शब्द का प्रयोग हुआ है। उन्हें तो योग शब्द प्यारा है और योगेश्वर, योगाधीश आदि नामों से पुकारा जाना ही उन्हें अच्छा लगता है अस्तु।

मैं तुम्हें बता रहा था कि योग मार्ग की ओर आना और उन योगेश्वर के तेज के दायरे के अन्दर बैठना, उनके मन में अपने प्रति संकल्प बना लेना, उनके मन में यह बिठा देना कि **''हे सर्वशक्तिमान योगेश्वर हम तेरे बच्चे हैं''**, यह भाव उनके अन्दर बना देना बहुत बड़े भाग्य की बात है। उनके संकल्प कभी परिवर्तित नहीं हुआ करते। मैं एक बात और बता दूँ तुम्हें–अरे वे तो योगेश्वर हैं। एक महात्मा जो मनसा, वाचा कर्मणा सत्य का अवलम्ब लेता है, उसके मन में भी यह संकल्प बन जाये कि मैंने अमुक के लिये अमुक कार्य करना है तो वह हो जाया करता है। मैं तुम्हें बता रहा था कि उन सर्वशक्तिमान के संकल्प की बात। श्री प्रभु जी नेपाल हिमालय से आये। उन्होंने संसार को इतनी बड़ी रोशनी दी जिसके अन्दर सारा संसार चल रहा है। मैं तुम्हें एक बात बताऊँ? तुम्हें याद हो या न याद हो, कीर्तन का प्रवाह आज से लगभग 45–50 वर्ष पहले से ही चला है। इससे पहले कीर्तन केवल मात्र बंगाली समाज में ही चलता था। मेरे

बड़े गुरु भाई को श्री प्रभु जी का संकीर्तन का वरदान हुआ। वरदान होने के बाद उन्होंने लाहौर में संकीर्तन कराना आरम्भ कर दिया। उस समय वहाँ पर 30-35 कीर्तन मण्डलियाँ बन गई। वह प्रवाह धीरे-धीरे सब जगह फैल गया।

**'गोविन्द जय जय गोपाल जय जय'**
**राधा रमण हरि गोविन्द जय जय**
**राधेश्याम राधेश्याम, श्याम श्याम राधे राधे'**

यह कीर्तन ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी का बनाया हुआ है। इस कीर्तन का प्रवाह सारे भारत में फैलता चला गया। बाद में ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी का देहवसान हो गया। उसके बाद मण्डली वालों ने कीर्तन में श्री प्रभु जी के चित्र रखने बन्द कर दिये। भगवान राम, कृष्ण तथा शिव आदि के चित्र ही रखे जाने लगे। मुझे अच्छी तरह याद है अमृतसर में एक आदमी ने आकर श्री प्रभु जी से कहा-प्रभु जी! मण्डली वाले अब आप के चित्र नहीं रखते हैं। श्री प्रभु जी ने पूछा-किसके चित्र रखते हैं? उसने बताया-भगवान राम के रखते हैं, श्री कृष्ण के रखते हैं, भगवान शंकर के रखते हैं। श्री प्रभु जी ने एक जवाब दिया और वह जवाब मुझे प्यारा लगता है। मैं जब उस आत्म सत्ता को देखता हूँ तब मैं यह समझता हूँ कि वे सर्वशक्तिमान ही ऐसा जवाब दे सकते हैं, संकीर्णदायरे का व्यक्ति ऐसा जवाब नहीं दे सकता। प्रभु जी ने कहा-कीर्तन में राम, कृष्ण के चित्र ही होने चाहिये, हमारे नहीं। यदि कोई रखता हो तो मना कर दो कि हमारे चित्र कीर्तन में न रखें। भगवान राम, कृष्ण आदि के ही चित्र रखें। वह व्यक्ति बहुत पीछे पड़ा कि प्रभु जी आप का चित्र क्यों नहीं रखने चाहिए। बहुत देर बाद श्री प्रभु जी ने एक जवाब दिया। प्रभु जी कहने लगे-बतायें योगी क्या करते हैं। यूँ लाईट फैंकी और पीठ फेर ली। उस रोशनी के अन्दर सारा संसार चला करता है किन्तु किसी को पता नहीं चलता कि लाईट कहाँ से आ रही है। जो कुछ करना था वह कर दिया गया। थोड़े दिनों के अन्दर यह कीर्तन गली-गली और कूचे-कूचे में फैल जायेगा, देश विदेश में फैल जायेगा किन्तु किसी को पता नहीं होगा कि यह कीर्तन की लहर कहाँ से आई है। न कोई हमें जानेगा, न गोपालानन्द को। जो यहाँ पर बुजुर्ग बैठे हुये हैं उनको मालूम होना चाहिये कि आज से 60-65 वर्ष पहले गली-गली में इस प्रकार से कीर्तन का प्रचार नहीं था मैं समझता हूँ कि सिद्धों के महासिद्ध मेरे गुरुदेव के संकल्प का फल था। इस के कारण ही आज घर-घर में गली-गली में इस संकीर्तन की ध्वनियाँ सुनाई दे रही हैं। यह कीर्तन की ध्वनियाँ हमारी हैं। उस कीर्तन को करने वाले श्री प्रभु जी का प्रकाश पाकर निहाल हो रहे हैं। मैं यह शब्द तुम्हें क्यों कह रहा हूँ? मेरे मन के अन्दर एक लहर आई थी एक ख्याल आया था कि उस लहर के दाता योगेश्वर श्री प्रभुजी के

तुम सब बालक हो। हम सब उनकी शरण में आये हुये हैं। उन सिद्धों के महासिद्ध योगेश्वर के मन में यह भावना आती है कि ये हमारे हैं। यदि यह भावना न आये तो वे तुम्हारी आँखों के सामने आकर क्यों खड़े हो जायेंगे? क्यों तुम्हें स्वप्न में, ध्यान में दर्शन देंगे? क्यों तुम्हारे काम करेंगे? तुम्हें अपना समझ लिया है इसलिये ये सब करते हैं। इसलिये मैं तुम्हें चेतावनी देता हूँ कि देखो! छूट न जाये पल्ला कहीं से। उनके चरणों का अवलम्ब छूट न जाये। यदि उनके चरणों से कोई छूटता है तो उसके लिये आगे मैं कुछ कहता नहीं। मैं समझता हूँ बड़ा जबरदस्त धोखा खाने वाला वह व्यक्ति है जो उन चरणों से किसी प्रकार पृथक हो जाये या उन चरणों की उपेक्षा कर दे। तो इसलिये अपने मन के अन्दर आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के चरणों का चिन्तन करते हुये योग मार्ग में बढ़ो। भगवान ने गीता में आज्ञा दी है **''जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते''** अर्थात् योग का जिज्ञासु भी कर्मकाण्ड के दायरे से आगे निकल जाता है। मनुष्य के मन में इतनी ही भावना आ जाये कि मैं योगी बनूँ तो वह कर्मकाण्ड के दायरे से आगे बढ़ जाता है और यदि थोड़ा बहुत योग मार्ग में प्रवेश कर गया, अनुभूतियाँ जारी हो जायें तो वह महापुण्य भाजन बन जाता है।

मैं तुम्हें बता रहा था श्री प्रभु जी का संकल्प कभी मिथ्या होने वाला नहीं होता। **साधु वचन पल्टे नहीं, पल्ट जाये ब्रह्माण्ड।** दूसरे शब्दों में यूँ कह दें **साधु संकल्प पल्टे नहीं पलट जाये ब्रह्माण्ड।** उनके मन में जो संकल्प आ गया वह कभी बदलेगा नहीं। वह तो अपने काम को कर देगा चाहे जैसा भी कर दें, कर देंगे। श्री प्रभु जी ने एक लीला दिखाई थी। तुमने वह लौकी वाला प्रसंग सुना होगा। यहाँ गुफा के पीछे जहाँ इस समय रसोई घर बना हुआ है। गाँव के एक ठाकुर का खेत था। एक दिन श्री प्रभु जी ने उससे लौकी लाने को कहा। वह कहने लगा–महाराज! इस समय खेत में लौकी नहीं है। श्री प्रभु जी उस के खेत में पहुँच गये। एक एक बेल उठाते रहे लौकी मिलती रही। मनों के हिसाब से लौकी निकल आई। यह उनके संकल्प का प्रभाव था। आज तुम उस सर्वशक्तिमान की छत्र छाया में बैठे हो, उनके चरणों का चिन्तन करने वाले बैठे हो! चलते फिरते उठते बैठते अपने गुरु मन्त्र का जाप करो। उनके मन में शुद्ध संकल्प बना लो। अपने प्यार से, अपनी श्रद्धा से, अपनी सेवा से उनके चरणों से गठबन्धन जोड़ लो, उनके मन की पक्की मुहर लगवा लो कि **''ये हमारे हैं''**। निश्चित जानो तुम मुक्तिद्वार तक पहुँच कर रहोगे, पीछे बिल्कुल नहीं रह सकते। यह बिल्कुल सीधी बात रहेगी। किन्तु दो तीन बातें छोड़ दो–ईर्ष्या, द्वेष, चुगली, निन्दा, ढिंढोरा पीटना यह छोड़ दो। यह नहीं होना चाहिये। जब तक परदोष दर्शन करने वाले रहोगे, वह दोष तुम में जमा होते चले जायेंगे और यदि तुम गुण देखने वाले बनोगे तो तुम्हारे अन्दर स्वतः गुण भरते चले जायेंगे। अरे, कोई दोषों का पुतला है तो

अपने आप भोगता रहेगा तुम्हें क्या चिन्ता पड़ी है भई? अपनी जिम्मेदारी लो दूसरों की जिम्मेवारी फिर बाद में ले लेना। उसके कर्म तो वह सर्वशक्तिमान स्वयं देख लेंगे। इसलिये तुम अपने मन को पक्का करके उनके चरणारविन्द का चिन्तन करो, उनके चरणों का ध्यान करो। आँख बन्द करके उन्हें अपने हृदय में छुपा लो। उनके संकल्प में आ जाओ कि **"ये हमारे हैं"** याद रखो, यम तुम्हारे पास फटक नहीं पायेगा। यमराज की ताकत नहीं कि तुम्हें आँख उठाकर देख ले।

तुमने "सिद्धयोग" पत्रिका में मिर्जापुर के उस बूढ़े के ध्यान–अनुभव पढ़े होंगे। वह स्वर्ग में चला गया। वहाँ देवताओं ने पूछा–तुम किस अधिकार से यहाँ आये हो? उसने कहा–मैं योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के शिष्यों में से हूँ। यमराज ने देखकर कहा–महाप्रभु रामलाल जी ने हरेक को स्वर्ग भेजने का ठेका ले लिया है अब मैं तुम्हें कैसे रोकूँ? श्री प्रभु जी की करुणा कृपा से लोगों के बड़े–बड़े अनिष्ट व बाधायें दूर हो जाती हैं उनके संकल्प से सभी कार्य होते हैं। यदि तुम उनके बच्चे हो उनकी शरण में आये हो तो अपनी आत्म शक्ति को बढ़ा कर देख लो क्यों व्यर्थ में मेरे कान खाया करते हो। अपने मन के अन्दर ताकत बढ़ाकर देखो कि उन सर्वशक्तिमान का तेज तुम्हें निहाल करता है या नहीं, तुम्हारे अन्दर जगमगाहट होती है या नहीं इसलिये खूब मन्त्र जाप करो, घोंट कर पी जाओ मन्त्र को। सोते–सोते जपो, जागते–जागते जपो, चलते–फिरते, उठते–बैठते हर समय जपते रहो। थोड़े दिन के अन्दर तुम्हारे अन्दर आत्मशक्ति बढ़ती चली जायेगी। मेरे मन में एक लहर आई थी इसलिए मैं तुम्हें कुछ चेतावनी देने के लिये बातें समझा रहा हूँ। मेरी आँखों में एक लाईट आई और मैं देखता हूँ कि वह सब के सिरों को छू रही है। और मैं अपने मन के अन्दर सोचता हूँ कि इस गुफा के चबूतरे पर बैठने वाले! तुम निहाल हो रहे हो, तुम्हें उस विश्वात्मा का तेज छू रहा है तुम यहाँ आकर उस कृपा को पा रहे हो इसलिये यहाँ आकर राग द्वेष के झमेले को छोड़कर अपनी साधना को बढ़ाओ, अपने तप को बढ़ाओ। यदि तुम में से कोई भाग्यवान इस प्रकार का निकल आये जो वर्ष छः महीने लगातार साधना कर ले तो सारी जिन्दगी की कमाई छः महीने के अन्दर ही मिल जायेगी। तुम अपने आप को झिलमिलाते तेज के अन्दर देख लोगे इसमें कोई भी शंका की बात नहीं। इसलिये अपने आप को योगी जानो। प्रभु जी के चरणों का अनन्य भाव से चिन्तन करो।

**गुरु भक्तिं सदा कुर्यात् श्रेयसे भूयसे नरः।**

अर्थात् भूरि–भूरि कल्याण चाहने वाले को सदा गुरु भक्ति करनी चाहिए। बड़ी मुश्किल से, कठिन प्रारब्ध से, बड़े भारी पुण्य के फल से इस प्रकार से परिपूर्णतम गुरुदेव की प्राप्ति

होती है। जैसे श्री प्रभु जी के चरणारविन्द मुझे और तुम्हें मिल गये हैं। इसलिये मेरी इन बातों को सुनकर के अपने मन को श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में लीन करो। उनके चरणों के चिन्तन में मन को लगाओ। तुम जिनको अपनाने के लिये आये, हृदय की कोठरी जिनके लिये खोल दी उनकी प्राप्ति के लिये पराई चर्चा में मत पड़ो। सत्य बोलने की आदत डालो। अपने अभ्यास को बनाये रखो, अपने आप को झुकाये रखो। मौत का सदा ध्यान रखो। कलिकाल का समय ध्यान रखो। इसमें नाना प्रकार के पाप होते रहते हैं। इस बात को याद रखो उन सर्वशक्तिमान का हाथ तुम्हारे सिरों पर है। इतनी बात का तजुर्बा मेरे ख्याल में मेरे हर सत्संगी बच्चे को होगा कि श्री प्रभु जी परिपूर्णतम हैं। उनसे बढ़कर परिपूर्ण गुरु मिलना इस कलिकाल में बड़ी मुश्किल और असंभव सी बात है। इसलिये देखो। काल का कुछ पता नहीं चलता। रोज–रोज आदमी मर रहे हैं। कोई दुर्घटना से मर रहा है कोई किसी और बहाने से मर रहा है। क्षण में ही मनुष्य बोलते–बोलते मर जाता है। इस कठिन व भयानक समय में सिद्धों के महासिद्ध श्री प्रभु जी का मिलना अनुष्ठानों की प्रेरणा बनना, पवित्र योग मार्ग की प्राप्ति इन सब संयोगों को पाकर ईर्ष्या द्वेष को छोड़कर योगाभ्यास में लग जाओ। कोई ईर्ष्या द्वेष की बात करता है तो उसके सामने हाथ जोड़ लो। कह दो–कृपा करो मुझ पर, तुम अपनी हालत पर रहो, मुझे अपनी हालत पर छोड़ दो।

इधर–उधर की व्यर्थ की बातों में समय न बिताकर भगवान के गुणानुवाद में अपने को लगाओ। यह कल्याण का कारण बन जायेगा। ईर्ष्या द्वेष की बातें साधक को साधत्व से गिराने वाली होती हैं। इसलिए साधक को मौन रहना चाहिए। साधक को संयमी रहना चाहिए। पराई चर्चा में नहीं पड़ना चाहिए। साधक को विशेष बात नहीं करनी चाहिए। साधक को अपनी नियमानुवर्तिता का पक्का होना चाहिए। जो इन बातों का पालन करते हैं परमात्मा की कृपा से श्री प्रभु जी अपने बालकों को हमेशा देखते रहते हैं। जो इस प्रकार से बढ़ने का प्रयत्न करते हैं उनकी वे सर्वशक्तिमान अवश्य मदद करते हैं। मेरी इन बातों को सुनकर अपने आप को उस पवित्र मार्ग पर चलाने का प्रयत्न करो। जो प्रयत्नशील रहेंगे निश्चित जानो प्रभु की कृपा होगी और उनका भला व कल्याण होगा।

सबको बार–बार आशीर्वाद।

सम्पादकीय–

# योगासन, प्राणायाम एवं सावधानियाँ

**–आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज**

यह सत्य है कि आज के भौतिकवादी युग में भी मनुष्य अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक है। उसके लिये योग को एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में माना जा रहा है। योग साधन व क्रियाओं से व्यक्ति अपने स्वास्थ्य का संरक्षण करता है और कोई विकार आ जाने पर उस विकार को स्वयमेव दूर भी कर सकता है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने युगों पूर्व ही इसके लाभ व महत्त्व को समझते हुये इन्हें जीवन का अभिन्न अंग बनाने की प्रेरणा दी है।

योगासनों का वर्णन सर्वप्रथम उपनिषदों में मिलता है वहीं पर भगवान शिव के ग्रन्थों में भी वर्णित है। कालान्तर में घरेण्ड संहिता, हठयोग प्रदीपिका तथा गुरु गोरक्षनाथ जी के साहित्य में अंकित हैं। हठयोग प्रदीपिका में योगी आत्माराम जी ने विस्तार से आसनों की विधि एवं लाभ का वर्णन किया है।

आजकल विद्यालयों में भी योगासन व प्राणायाम कराये जा रहे हैं। इस विषय में एक बात विचारणीय भी है कि जब विद्यार्थी स्कूल जाता है तो वह भोजन करके जाता है वहाँ जाते ही यदि योगासन कराये जाते हैं तो निश्चित रूप से हानि हो सकती है। भोजन करने के कम से कम चार घण्टे बाद आसन किये जा सकते हैं। शारीरिक व्यायाम तो किये जा सकते हैं जिनमें पेट पर जोर न पड़ता हो किन्तु योगासन नहीं करने चाहिए। विशेषकर सर्वांगासन, धनुरासन, चक्रासन, हलासन, मयूरासन, गर्भासन, कर्ण पीड़ासन, सेतु आसन नहीं करने चाहिए क्योंकि इन आसनों में सीधे पेट पर जोर पड़ता है। आँतों पर जोर पड़ने से पाचन तन्त्र पर इन का दुष्प्रभाव पड़ता है। आँतें बड़ी कोमल होती हैं। इनके साथ खिलवाड़ करना नहीं चाहिए अन्यथा साधक जीवन भर पेट का रोगी बना रहता है।

साधक को आसन करने के पश्चात् तुरन्त नहाना नहीं चाहिए। कम से कम पौन घण्टा या एक घण्टा का समय देकर ही नहाना चाहिए अन्यथा सर्द–गर्म होने से शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है और कालान्तर में गठिया आदि वात रोगों से ग्रसित हो जाता है।

योगासन करने के पश्चात् साधक को अत्यधिक ठण्डा जल, कोल्ड ड्रिंक्स या कुलफी आदि कतई नहीं खाने चाहिए। इससे आँतों पर दुष्प्रभाव पड़ता है। दाँत या जबड़े भी कमजोर हो जाते हैं। योगासन व प्राणायाम के अभ्यासी को जिम आदि आधुनिक व्यायाम का त्याग करना चाहिए। बलपूर्वक शरीर के तन्तुओं को तोड़ देने पर कालान्तर में अभ्यासी को बहुत पीड़ा होती है। शरीर में रक्त का संचार समान रूप से न होने के कारण दर्द होने लगता है और

वात रोगों से पीड़ित भी देखे जाते है। साधक के लिये योगासन, प्राणायाम एवं मुद्राओं का ही अभ्यास श्रेयस्कर है।

योग में घट शुद्धि या शरीर शुद्धि के लिये 6 क्रियायें होती है जिन्हें षटकर्म कहते है। ये है नेति, धौति, न्यौली, वस्ति, कपाल भाति एवं त्राटक।

इनमें से कुछ क्रियायें ऐसी है जिन्हें साधक प्रतिदिन कर सकता है। नेति, न्योलि, कपाल भाति व त्राटक का अभ्यास प्रतिदिन किया जा सकता है किन्तु धोति व वस्ति का अभ्यास एक दो माह में एक बार ही किया जाना चाहिए। अभ्यास के समय कई दिन किये जा सकते हैं तभी क्रिया पूर्ण होती है।

घट शुद्धि के लिये दो क्रियायें और भी हैं वे हैं वमन तथा शंखप्रक्षालन या विरेचन। आयुर्वेद में वमन विरेचन का विधान है। वमन के लिये मदनफल आदि का प्रयोग किये जाते हैं तथा विरेचन के लिये दस्तावर औषधियों का प्रयोग किया जाता है। योग में वमन गुनगुना जल में थोड़ा सा नमक मिलाकर किया जाता है तथा शंख प्रक्षालन के लिये भी गुनगुना जल नमक मिलाकर प्रयोग में लाया जाता है। कुछ विशेष आसन होते हैं जिनका अभ्यास करते रहते हैं और जल पीते रहते हैं। अन्त में गुदा मार्ग से स्वच्छ पीत वर्ण का जल निकलने लगता है तब ठण्डा पानी पीकर जल पीना बन्द कर दें तथा आधे घण्टे पश्चात् मूंग दाल मिला खिचड़ी खाकर आराम करें। यह क्रिया भी महीने में एक बार ही करनी चाहिए।

इसी प्रकार से वमन क्रिया भी सप्ताह में एक या दो बार ही करनी चाहिए। प्रतिदिन करने से मन्दाग्नि हो जाती है तथा पेट के विभिन्न रोग हो जाते हैं। साधक को शरीर विज्ञान का भी बोध होना चाहिए। साधक को अपने बलाबल को देखकर ही प्राणायाम साधन करने चाहिए।

प्राणायाम का अर्थ है प्राणों का विस्तार। अर्थात् शरीर के छोटे से छोटे टिशू तक प्राणों का संचार बना रहे। शरीर के जिस भी हिस्से में प्राण या आक्सीजन नहीं पहुँचता है वह स्थान रुग्ण हो जाता है और धीरे-धीरे चेतना शून्य हो जाता है। यदि साधक के मस्तिष्क की ओर प्राण संचार रुक जाये तो मृत्यु भी हो जाती है। हमारे पूर्वजों ने प्राचीन काल से ही इस विज्ञान को समझा है। इसीलिये त्रिकाल सन्ध्या के समय अनुलोम-विलोम एवं रेचक, कुम्भक आदि प्राणायाम प्रतिदिन किये जाते हैं। प्राणायाम का अभ्यास योग्य गुरु के सानिध्य में ही करना चाहिए नहीं तो उक्ति चरितार्थ होती है-**देखा देखी साधे योग। छीजे काया बाढ़े रोग।**

साधक को शास्त्र सम्मत आहार विहार ही करना चाहिए। व्रत आदि नहीं करना चाहिए। आनन्द कन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने जीवन तत्व साधन की क्रियायें अपने मन से उद्घाटित की हैं जो हर व्यक्ति के लिए निरापद हैं अर्थात् हानि की संभावना नहीं है। बच्चा बूढ़ा कोई भी कर सकता है। मातायें जो गर्भवती हैं उन्हें आसन व अन्य क्रियायें डॉक्टर की सलाह से ही करनी चाहिए। दो माह के गर्भ होने के पश्चात् आसन आदि त्याज्य हैं। टहलना ही उनके लिये पथ्य है।

# योग साधना के अन्तर्गत आने वाली बाधाओं से कैसे बचें ?

**डॉ. जे. पी. शर्मा,** कृषि उपनिदेशक से. नि. पौण्टा साहिब, हि. प्र.।

प्रकृति का नियम है, जब भी हम कोई कार्य आरम्भ करते हैं, उस समय अकस्मात् कुछ अवरोध आने लगते हैं, जिनसे कर्ता परेशानियां अनुभव करने लगता है। जिनमें साहस होता है, वे अपना कार्य करते रहते हैं तथा अवरोधों का सामना सूझबूझ से करते हैं। उनके कार्य सुचारूरूपेण सफल होते हैं। परन्तु जिनमें साहस तथा लगन नहीं होती वे अपने कार्य आधे अधूरे छोड़ देते हैं। ऐसे लोग जीवन में सफल नहीं हो पाते हैं। योग साधकों को चाहिए कि वे साहस तथा लगन के साथ अपनी योग साधना, विघ्नों की चिन्ता किये बिना करते रहें। योग दर्शन में भगवान पतंजलि ने कहा है–

**''व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्तिदर्शना–**
**लब्ध भूमि कल्याण कत्वानस्थित चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः।''**

अर्थात् व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व, ये नौ चित्त के मल हैं, इन्हें ही अन्तराय अथवा विघ्न कहते हैं। योग साधना शुरू करने से पूर्व हर साधक को इन्हें जानना आवश्यक होता है।

1. **व्याधि**–असमय अथवा न्यूनाधिक खाद्य तथा पेय पदार्थों के खाने–पीने से शरीर में वात, पित्त, कफ पैदा हो जाते हैं, इस कारण तरह–तरह के रोग शरीर में बनने लगते हैं। रोगों के कारण साधक योग साधना नहीं कर पाता, इसी कारण इन्हें योग साधना का विघ्न कहते हैं।

अजीर्ण, नींद की खुमारी, अति परिश्रम प्रवृत्ति से ब्रह्माकार वृति का अभाव हो जाता है। इनसे बचने के लिये लघु भोजन करना होता है तथा खाने–पीने पर नियंत्रण रखना आवश्यक होता है। उस स्थिति में शरीर में होने वाली व्याधियों से बचा जा सकता है। भोजन के विषय में भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है–

**''नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।**
**न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।''** *(गीता, 6/16)*

हे अर्जुन! जो अधिक भोजन करता है, जो बिना खाये रहता है, जो बहुत सोता है अथवा

जो बहुत जागता है, वह योग का अधिकारी नहीं हो सकता। बल्कि–

**''युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।**

**युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा।।''** *(गीता, 6/17)*

जो नियमपूर्वक भोजन करता है, नियमित विहार करता है। नियम से सारे कर्म करता है। जिसका जागना, सोना सब नियमानुसार होता है, उसे योग सफलतापूर्वक प्राप्त हो जाता है। उसके सारे दु:ख दूर हो जाते हैं।

**2. स्त्यान**–कुछ लोगों में योग साधना करने की इच्छा तो होती है परन्तु साधना कब करें? कहाँ करें? शुभ–अशुभ के विचार चित्त की संकीर्णता या संशयता के कारण साधना करने में अनिश्चितता बनी रहती है, उसे ही 'स्त्यान' विघ्न कहते हैं। अत: साधक को दृढ़ निश्चय बने रहना आवश्यक है।

**3. संशय**–साधक के परस्पर विरोधी विचार ही 'संशय' कहे जाते हैं। यह वस्तु कैसी है–ठीक होगी या नहीं। इस काम को करूँ या नहीं। योग साधना करूँ या नहीं। कोई लाभ होगा या नहीं। कहीं शरीर में परेशानी न आ जाये, ये सब विचार संशय कहलाते हैं। योग का कैवल्य लाभ होता है या कल्पना है यह सब योग साधना में विघ्न उत्पन्न करते हैं। अत: साधक में विचारों की दृढ़ता होनी चाहिए।

**4. प्रमाद**–योग साधक जब साधना काल में दृढ़ता से प्रयत्न नहीं करता, केवल मात्र दिखावा करता है तथा उदासीनता रखता है, उस अवस्था को 'प्रमाद' कहा जाता है।

**5. आलस**–शरीर में कफ आदि के कारण भारीपन आ जाता है जिससे शरीर सुस्त बन जाता है तथा किसी काम को करने का मन नहीं करता, चित्त की उसी अवस्था को 'आलस्य' कहते हैं। शरीर निरोगी रखने के उपचार अपनाने चाहिए।

**6. अवैराग्य**–जब मनुष्य के आचरण–व्यवहार आदि में विषयभोगों की इच्छा बनी रहती है, चित्त की उसी अवस्था को अविरति या 'अवैराग्य' कहा जाता है। विषय वासना, विषय तृष्णा, योग की प्रबल शत्रु है, जो साधक को अन्तर्मुखी नहीं होने देती, इसलिये इसे योग साधना का विघ्न कहा जाता है। योग साधक को संगरहित रहना श्रेयस्कर होता है। संग से सारे दोष पैदा होने लगते हैं। योगारूढ़ भी संग से अधोगति को प्राप्त होते हैं, फिर अल्प सिद्धि वाले अपक्व योगी यदि संग से अधोगति को प्राप्त हो तो इसमें आश्चर्य ही नहीं है।

विषय–तृष्ण के दोष देखने से अवैराग्य दोष दूर हो जाते हैं। लड्डू में विष मिला है, अगर यह बात लोगों को पता चल जाये, तब कोई भी उसे नहीं खायेगा, चाहे कितनी भी भूख लगी हो अथवा कोई कितना भी गरीब हो। उसी प्रकार सद्गुरु के उपदेशों से दोषों का ज्ञान मिलने

पर कोई साधक उन्हें भोगने की इच्छा नहीं करता है।

**7. भ्रान्ति दर्शन**—सद्गुरु तथा योग शास्त्रों के द्वारा उपदिष्ट योग साधना में असाधनत्व बुद्धि को 'भ्रान्ति दर्शन' या विपर्यय ज्ञान कहते हैं। यह भ्रान्ति दर्शन भी विपरीत ज्ञान तथा विपरीत प्रवृत्ति के कारण साधक को योग में प्रवृत्त नहीं होने देता। अतः इसे योग का विघ्न कहा जाता है।

**8. अलब्ध भूमिकत्व**—समाधि की भूमिकायों में किसी भी भूमिका का अभ्यास करते रहने पर किसी कारण से उसका प्राप्त न होना 'अलब्ध भूमिकत्व' कहलाता है। इससे साधक का चित्त असन्तोषी तथा बहिर्मुखी बना रहता है, जो योग साधन में विघ्न डालता है।

**9. अनवस्थि तत्व**—मधुमती आदि योग की भूमिकाओं में किसी भूमिका की प्राप्ति होने पर भी विस्मय अथवा कर्तव्य के विस्मरण या ज्ञान के द्वारा उसमें चित्त को सुस्थिर न कर पाना 'अनवस्थि तत्व' कहलाता है।

योग की किसी भूमिका के प्राप्त होने पर, इसी से भलीभांति स्थिरता हुई है, किसी कारण से ऐसा मान लिया जाये तथा उससे आगे की सुस्थिरता के लिये प्रयत्न किया जाये तो उससे उत्तर भूमिका की प्राप्ति तो होगी ही नहीं, साथ ही उस भूमिका से भी वह भ्रष्ट हो जायेगा। अतः साधक को चित्त सुस्थिरता के लिये प्रयत्न करते रहना चाहिए।

चित्त को विक्षिप्त करने वाले उपरोक्त नौ विघ्न, चित्त के ''मल'' भी कहे जाते हैं। अतः ये नौ योग के मल या विघ्न ही नहीं अपितु चित्त के विक्षेप करने वाले इन विघ्नों के साथ दुखादि अन्य विघ्न भी होते हैं। योग दर्शन में पतंजलि महाराज इनके नाश करने के बारे में कहते हैं—

**''तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः''**। *(समाधि/32)*

विक्षेप तथा उसके साथ होने वाले दुःखों की निवृत्ति के लिये एक तत्व का अभ्यास करना चाहिए। इसी प्रकार योगवासिष्ठ में भी कहा है—

**तावन्निशीथवे ताला वलान्ति हृदि वासनाः।**
**एक तत्व दृढाभ्या साद्यावन्न विजितं मनः।।**

जब तक एकतत्व के दृढ़ अभ्यास से मन को पूर्णरूप से जीत नहीं लिया जाता, तब तक अर्धरात्रि में नृत्य करने वाले वेतालों के समान वासनायें हृदय में नाचती रहती हैं।

अतः योग साधना काल में आने वाले विघ्नों को धीरे–धीरे हटाना चाहिए। इसे इस उदाहरण से जानने का प्रयत्न करना चाहिए—

एक चरवाहे को रखवाली के लिये एक बछिया दी गई जो जंगल में भटक गई क्योंकि उसे

भटकने की आदत है। कुछ काल पश्चात् बछिया गर्भवती हो गई तब किसी ने उसे खाने को डाल दिया। बछिया खाने के लालच में खिलाने वाले के साथ चली गई। कुछ समय पश्चात् वह बछिया पुनः भटक गई क्योंकि भटकने की उसे आदत है। उसे फिर ढूँढकर लाया गया। अब बछिया ने एक बछड़े को जन्म दिया। अपने बछड़े के मोह के प्रेमपाश के कारण अब बछिया का भटकना बन्द हो गया। उसे कितना भी मारो–भगाओ, बछड़े के मोहपाश के कारण इधर–उधर भटकना बिल्कुल बन्द हो गया।

इसी प्रकार साधक की बुद्धि भी बछिया रूप से संसार रूपी जंगल में इधर–उधर भटकती रहती है तथा विषय वासनाओं के माया जाल में उलझकर रहने लगती है। परन्तु योग साधना करते–करते बुद्धि में ज्ञान उदय होने से बछिया रूपी बुद्धि स्थिर हो जाती है तथा विषय वासनाओं की तरफ उसका मन नहीं जा पाता। उसकी बुद्धि अन्तर्मुखी हो जाती है। इस लिये हर प्रयत्न से अपने चंचल मन को इधर–उधर भटकने से रोक कर ब्रह्म में लगाते रहना चाहिए। यही योग का परिणाम है।

**पूज्य सद्‌गुरुचरणों में साष्टांग प्रणाम्।**

## मृत्यु और अमरत्व

*हर एक के पीछे मृत्यु का डर लगा हुआ है। परन्तु मृत्यु, दुःख, कष्ट आदि जो हैं, वे हमारे उत्तम शिक्षक हैं, इस दृष्टि से देखने से मृत्यु का महत्त्व ध्यान में आ सकता है। गलतियों और अशुद्धियों से बचाने की सूचना दुःखों और कष्टों से मिलती है। मृत्यु इस नश्वर जगत् की साक्षी दे रहा है और नश्वर जगत में शाश्वत आत्मा है, यह ज्ञान मृत्यु को देखने से ही होता है। मृत्यु न होगी, तो जन्म भी नहीं होगा। पुत्र जन्म का उत्सव देखना है, तो पूर्वजों की मृत्यु अवश्य सहन करनी चाहिए। इस प्रकार मृत्यु हमारी उन्नति में विलक्षण सहायता करती है।*

# बहिन श्री द्रौपदी देवी जी

(एक साधक)

बहिन श्री द्रौपदी जी का जन्म अमृतसर में पवित्र क्षत्रियकुल में हुआ था। माता–पिता के लाड़–प्यार में बाल्यावस्था व्यतीत हो चुकने पर उस समय की सामाजिक परम्परा का निर्वाह करते हुए इनका विवाह अल्पायु में ही कर दिया गया था। परन्तु विधाता का विधान ऐसा रहा कि इनका सौभाग्य कुछ विशेष दिन न रह सका। बचपन से ही इनका रुझान ईश्वर–भक्ति, सत्संग, कीर्तन, की ओर रहा है। अतः वैधव्य दुःख प्राप्त कर यह सब ओर से मन हटाकर उस ओर और भी अधिक प्रवृत्त हो गयीं। बहिनजी ने अपना दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार रखा जिससे मन को निरर्थक बातें सोचने का अवकाश ही न मिल सके। गृह कार्यों के साथ–साथ ईश्वर–पूजन, भजन, आदि का नैतिक कार्य भी नियमानुसार चलता था। विश्वात्मा परम पावन श्रीकृष्ण जी के कमल–चरणों में इनका स्वाभाविक अनुराग था। अपनी मति के अनुसार जिस प्रकार भी सम्भव था, अखिल ब्रह्माण्ड नायक का चिन्तन किया करती थीं। क्योंकि अभी तक श्री सत्गुरु देव जी के पावन उपदेश का प्रकाश प्राप्त नहीं हुआ था। क्रमशः समय निकट आया और अपने परम पुण्यों के फलस्वरूप उनके पवित्र तप एवं स्वाध्याय के अनुरूप आनन्दकन्द परम गुरुदेव योगयोगेश्वर महाप्रभुजी रामलालजी के पवित्र चरण–कमलों की इनको प्राप्ति हुई। श्री प्रभूजी के चरणारविन्दों की प्राप्ति में एक विशेष घटना कारण बनी। बहिन द्रौपदीजी अमृतसर में कहीं दर्शनार्थ गई थीं। अमल साहब के पास से निकल रही थीं तो आँखों के सम्मुख एक विचित्र दृश्य आया जिसे देखकर यह अत्यन्त विस्मित हो गई। मन में सोचने लगी इस घोर कालिकाल में यह कैसे सम्भव हो सकता है? बात यह थी कि सामने से हमारे गुरुभाई श्रीगुलाब राज जी आ रहे थे। उस समय वह श्री प्रभुजी के प्रेम में निमग्न, ध्यान के शरूर में मस्तों के समान चले आ रहे थे। बहन द्रौपदी जी ने स्पष्ट देखा–सम्मुख आ रहे महापुरुष की आकृति भगवान सदाशिव के समान ही आभाषित हो रही है। तीसरा नेत्र बिलकुल स्पष्ट दीखता था जिससे एक दिव्य प्रकाश निकलकर सामने पड़ रहा था जिससे वे आगे बढ़ते जाते थे। इनकी वेषभूषा साधारण गृहस्थों जैसी दिखाई देती थी किन्तु मुख के चारों ओर एक विशेष प्रकार का दिव्य तेज मण्डल आभाषित था। बहिन द्रौपदीजी इकटक इन्हें देखती रहीं। मन में संशय होता क्या यह स्वयं सदाशिव हैं? शंका मिटाने को बार–बार देखती कि तीसरा नेत्र अब भी है या नहीं। परन्तु इन्हें वह तृतीय नेत्र निरन्तर ही दीखता रहा।

स्वभावत: इन महापुरुष के बारे में इन्हें जिज्ञासा हुई परन्तु स्वयं उनसे पूछने का साहस न कर सकीं। अत: आसपास के व्यक्तियों से साहस करके पूछा–इस घोर कलिकाल में यह कौन महापुरुष है?

इनका मुखमण्डल दिव्य तेज से युक्त है। इनकी आकृति स्वयं भगवान शिव से मिलती है। भाई श्री मुलखराज जी के साथ वाले व्यक्तियों ने बताया बहिन जी यह योग योगेश्वर प्रभु जी रामलाल जी महाराज के परम कृपापात्र हैं। इनका नाम श्री मुलखराज जी महाराज है। परम कृपानिधि श्री प्रभूजी ने अपनी कृपा से इनको 'तुरीय स्थिति' प्रदान की है। इस कारण इनके नेत्र चौबीस घंटे बन्द रहते हैं। इस प्रकार की बातें सुनकर द्रौपदी जी को वर्णनातीत हर्ष हुआ और श्री प्रभुजी का निवास स्थान पूछकर तत्काल ही दर्शनार्थ चल पड़ीं। बहिन जी जिस समय श्री प्रभूजी के दरबार में पहुँचीं उस समय वहाँ नियमानुसार सत्संग चल रहा था। अनेकों सत्संगी स्त्री–पुरुष बैठे थे। ध्यानानुभव इत्यादि की चर्चाएँ चल रही थीं। कोई–कोई भगवान के अनुराग में आकर भजन आदि भी सुना रहे थे। बहिन द्रौपदीजी को भी भजन गा कर सुनाने की इच्छा हुई थी। श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों के सम्मुख बैठकर प्रेम में मग्न होकर द्रौपदी जी ने एक भजन गाया। श्री मुलखराज जी उस समय श्री प्रभुजी के निकट ही बैठे हुए थे। द्रौपदी जी का भजन सुनकर उनका मन बड़ा प्रसन्न हुआ। श्री प्रभुजी अभी तक यही विचार कर रहे थे कि इस देवी को क्या दिया जाये। संस्कार बहुत छोटा सा दिखाई देता था। किन्तु श्री मुलखराज जी जो उस समय 'तुरीय' स्थिति में थे यह भजन सुनकर गद्‌गद् हो उठे थे। उन्होंने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की–हे ! अगाध करुणासागर कृपा करके इस देवी को आप चूड़ाला की सम्पत्ति प्रदान करें यह सब प्रकार से दया की पात्रा है। मुलखराज की यह बात सुनकर श्री प्रभु जी कुछ विचार में पड़ गए और सोचने लगे अरे! इसने यह बहुत बड़ी बात कह दी है।

चुड़ाला तो परम योगिनी थी। उस महति शक्ति की यह अधिकारणी नहीं है। जब श्री प्रभुजी इस प्रकार विचार–मग्न थे उसी समय अकस्मात एक विलक्षण घटना घटी। वह नैपाल वाले सदाशिव जो हमारे दादा गुरु हैं जिनकी आयु का कोई पता नहीं लग सका है जो प्रात:काल बच्चे दिखाई देते हैं मध्याह्नकाल में युवक एवं सायं बिल्कुल वृद्ध दिखाई देते हैं वही स्वयं आकाश में दिखाई दिए। वहीं खड़े–खड़े प्रसन्न मुद्रा में कहने लगे कोई बात नहीं सब ठीक है। बच्चे के मुख से निकला है दे दो यह देवी अधिकारिणी है। श्री महाप्रभु की यह उदारतापूर्ण आज्ञा सुनकर श्री प्रभुजी ने बहिन द्रौपदी जी पर तत्क्षण गहरा शक्तिपात किया। तत्काल ही प्रभाव हुआ और बहिनजी की ध्यान स्थिति ऊँची चलने लगी। प्रतिक्षण प्रभुजी का दिव्य साक्षात् कार बना रहेन लगा। भगवान श्रीहरि के चतुर्भुज रूप का दर्शन करते–करते वे

स्वयं चतुर्भुजा बन गयीं। श्रीहरि के स्वरूप में वे स्वयं को लीन रखा करतीं थीं। उन्हें स्वयं के चतुर्भुजा होने का भान रहता था। उनके इस ध्यान का यह प्रभाव पड़ा कि वह अन्य ध्यानी भाई बहिनों को भी चलती चतुर्भुजा दिखाई पड़ती थीं, स्वयं श्री प्रभुजी भी प्रसन्न मुद्रा में उन्हें चतुर्भुजा कहकर बुलाया करते थे। कृपासागर के मुखारविन्द से निकलने के कारण इनका चतुर्भुजा नाम प्रख्यात हो गया।

बहिन द्रौपदी जी की ध्यान–स्थिति दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ने लगी। खुली आँखों से विश्वमोहन को सर्वत्र देखतीं थीं। वह अखिल लोकपावन जगदात्मा श्री हरि इनके साथ विविध क्रीड़ाएँ किया करते थे। इनकी स्थिति इतनी ऊँची बढ़ी कि भगवान श्रीकृष्ण इनके आव्हान पर स्वयं आकर भोजन किया करते थे। जब वह भोग लगाती थीं तो इनकी थाली से एक दो फुल्का घट जाया करता था। वह विलक्षणा बात बहिन जी ने श्री प्रभु जी के चरण कमलों में निवेदन की। श्री प्रभुजी ने आदेश दिया, "द्रौपदी श्री प्रभु की तुम पर महान कृपा है। परन्तु अपनी यह स्थिति किसी को बताना नहीं" परन्तु होनहार ऐसी कि बहिन जी के मुख से यह बात निकल गई, इतनी बड़ी बात मन में न रख सकीं। सुन कर सभी सत्संगी भाई–बहन इस चमत्कार को प्रत्यक्ष देखने के लिए उत्सुक हो गए एवं श्री प्रभु जी की बारम्बार प्रार्थना करने लगे–हे! प्रभो यह चमत्कार तो हमें दिखा ही दीजिए। कृपानिधि श्री प्रभु जी ने द्रौपदी जी को आदेश दिया–'तुमने यह काम ठीक नहीं किया जो यह घटना सबको बता दी। अब जब सबसे कह ही दिया है तो सबके सामने भोग लगा कर दिखा।' श्री प्रभु जी की आज्ञा पाकर सब सत्संगी भाई–बहिन बैठ गए। बहिन जी ने एक थाली में भोजन परोसा और श्री हरि को निवेदन करने लगीं उस समय उन्होंने स्वयं बनाया हुआ एक भजन गाया था जो इस प्रकार है–

**बैकुण्ठ वासी हे प्रभु जी, भोग लगा जा आजा**
**मैं लिए बैठी हूँ अपने थाल में भोजन, दर्श दिखाजा आजा।**

जिस समय ध्यान मग्न हो द्रौपदी जी ने यह प्रार्थना की तो सबने आश्चर्य से देखा कि रोटी का ग्रास टूटता है और विलीन हो जाता है। ध्यानाभ्यासी लोगों ने देखा कि भगवान श्रीकृष्ण स्वयं भोजन पा रहे हैं। इस अद्भुत घटना को देख कर सभी सत्संगी भाई–बहिनों के मन में अतिशय उत्साह बढ़ा। वे दृढ़ता के साथ अपना ध्यानाभ्यास करने लगे। बहिन द्रौपदी जी की दिव्यानुभूति दिन प्रतिदिन उच्च स्तर की बनने लगी। शनैः शनैः यह "तुरीय स्थिति" में रहने लगीं। इनके मुख मण्डल पर दिव्यता झलकने लगी। स्वभाव में सात्विकता घर करती चली गई। एक दिन बहिन जी ध्यान–मग्न हुईं। श्री प्रभु जी के दर्शनार्थ भाई के कटरे की ओर जा रही थीं। तुरीय स्थिति में होने के कारण यह उन्मादिनी सी चल रही थीं। जाति से यवन एक

कामी व्यक्ति की कुदृष्टि इन पर पड़ी और उसने अपने हाथ से इनका शरीर स्पर्श करने की चेष्टा की। इनकी वृत्ति भंग हो गई आँखें खुली तो देखा कि नैपाल वाले सदाशिव स्वयं आकाश मार्ग से इनके साथ-साथ चले रहे हैं। बहिन जी ने उनसे विनम्रता पूर्वक कहा-हे सर्व शक्तिमान महाप्रभु जी मैं आपकी पुत्री और यह घृणित मन्द-बुद्धि पापी आपके चरणारविन्दों के सम्मुख इसने यह साहस किया। इसके फल को यह अभी भोग ले। बहिन जी के मुख से यह शब्द निकलते ही वह व्यक्ति अकस्मात् गिर पड़ा और उसका प्राणान्त हो गया। उपरोक्त घटना को देखने वाले सभी व्यक्तियों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वे परस्पर कहने लगे-यह देवी तो स्वय शक्ति स्वरूपा है, जिसके वचन मात्र से यह व्यक्ति इस दशा को प्राप्त हुआ।

# पवित्र प्रज्ञा

जैसे वायु का हल्का सा झोका भी निस्सार तिनके को उड़ा देता है, उसी प्रकार प्रज्ञाहीन मूढ़ पुरुष को थोड़ी सी आपत्ति भी शोकाकुल कर देती है।

तीक्ष्ण और विशुद्ध बुद्धि से युक्त पुरुष बिना शास्त्राभ्यास और बिना दूसरों का सहारा लिए भी संसार-सागर से अनायास ही पार हो जाता है।

बुद्धि की मन्दता समस्त दुःखों की चरम सीमा है। अतः विशुद्ध बुद्धि की अभिवृद्धि के लिए वही प्रयत्न करना चाहिए जैसा प्रयत्न धन-सम्पदा आदि के उपार्जन के लिए किया जाता है।

पवित्र प्रज्ञा (बुद्धि) चिन्तामणि के समान है। कल्पलता के समान मन-चाहा फल देती है। श्रेष्ठ पुरुष पवित्र प्रज्ञा के द्वारा संसार-सागर से पार हो जाता है किन्तु अधम मानव उसमें डूब जाता है।

-योग वाशिष्ठ

# "योगिनी रामरती"

## (एक साधक)

बंगाल बिहार की सीमा पर जनुनियाँ घाट नामक एक स्थान है। उस स्थान को देखने के विचार से एक बार योग–योगेश्वर श्री प्रभु जी घूमते–घूमते वहाँ पहुँच गए, और पवित्र गंगाजल में स्नान करके अपने नित्य आत्म–स्वरूप का चिन्तन करते हुए वहाँ बैठ गये। यह स्थान थोड़ा सा एकान्त में था। थोड़ी ही देर में यहीं पर कहीं से घूमते हुए दो पिता–पुत्र आए। वे वर्ण से क्षत्रिय थे। उनके हाथ में कृपाण लगी हुई थी। उनका मुख बहुत लाल था। उनके दुःखी मन को देख करके श्री प्रभुजी को बड़ी दया आई और पूछा कि भाई तुम बड़े दुखी मालूम पड़ते हो इसका क्या कारण है? यदि कोई खास गोपनीय बात नहीं तो तुम हमें बता दो। सम्भव है तुम्हारी दुख–निवृत्ति का कारण हम बन जायें। श्री करुणाकर प्रभुजी के वचनों को सुन कर पहले तो उन दोनों ने संकोच किया किन्तु बाद में वृद्ध क्षत्रिय ने संकोच छोड़ करके सत्य–सत्य कह दिया। उसने श्री प्रभुजी को बतलाया कि महाराज हम दोनों पिता–पुत्र हैं। साथ में यह मेरा पुत्र है। हमारी एक लड़की है उसका नाम रामरती है। सरकार बस वह बहुत दुराचारिणी हो गई है। लोक–लाज कुलकान सभी उसने बिना किसी संकोच के छोड़ दिए हैं। और खुल्लम–खुल्ला मद्य पी करके व्यभिचार करती है। आत्मांश होने के नाते से थोड़ा सा हमें दुःख है। लोकापवाद हमसे सहन नहीं होता। यही दुःख लेकर के हम दोनों यहाँ आये हैं और यह विचार कर रहे हैं कि या तो देश छोड़ करके हम ही कहीं चले जायें जिससे ये हृदय वेधिनी कर्ण कटु बातें हमारे कानों में न पड़ सकें या हम अपने हाथों से उस लड़की का कत्ल कर दें जिससे सदा के लिए ही यह कंटक कट जाये और हम अपवाद से बच जायें। श्री प्रभुजी ने उनकी सत्य बातों को सुन कर आश्वासन देते हुए कहा भाई तुम्हें भी कहीं जाना न पड़े और उस लड़की का भी उद्धार हो जाये तो क्या यह बहुत ही उत्तम न होगा? श्री प्रभुजी के इस पवित्र वाणी को सुनकर उन दोनों ने कहा महाराज हमारे विचार में तो यह असम्भव है। जिस प्रकार बिना पौधे के आकाश में फूल नहीं लग सकता उसी प्रकार से इस लड़की का उद्धार होना भी हमारी दृष्टि में असम्भव है फिर भी आप महात्मा हैं सर्व समर्थ हैं आपकी कृपा से कुछ हो जाये तो अच्छा ही है। वह लड़की इन स्थानों पर ही घूमा करती है। सम्भव है वह कहीं न कहीं से आये कदाचित वह आपकी बात को मान ले और उसका सुधार हो जाये तो अच्छा ही है। इसी बीच में रामरती कहीं से घूमती हुई वहाँ आ गई। उसके सिर के बाल पागलों की तरह बिखरे हुए थे। शराब की

बोतलें हाथ में थीं।

परम कारुणिक श्री प्रभुजी ने कृपा करके उसे अपनी ओर बुलाया और कहा देवी तू यह कर्म क्यों करती है। इस भ्रष्टाचार को तू छोड़ दे तो तुझे इससे भी बड़ा आनन्द मिल जायेगा। किन्तु उस लड़की को विश्वास न हुआ। उसने बिल्कुल स्पष्ट कहा यह सब काम मैं अपने आनन्द के लिए करती हूँ। दो–चार व्यक्ति मेरे साथ रहते हैं मुझे किसी का भय नहीं है। इससे बढ़कर आनन्द संसार में मुझे और कोई नहीं दिखाई देता। यदि इससे बढ़कर आनन्द कोई और होता हो और यदि मुझे वह दे सकें तो यज्ञोपवीत पकड़कर शपथ ग्रहण करें तब मैं आपकी बात पर विश्वास कर सकती हूँ। यदि वह आनन्द इससे बढ़कर हुआ तो मैं इन कर्मों को छोड़ दूँगी। रामरती की इस प्रकार की हठ को देख कर और उसके कल्याण को अपनी दृष्टि में रखकर परम कृपावश हो प्रभुजी ने यज्ञोपवीत पकड़कर सौगन्ध खाई और कहा कि हाँ देवी इससे बड़ा आनन्द होता है और वह हम तुम्हें अभी देंगे जिसको पाकर तू अपने तन की सुध–बुध भूल जायेगी और आज से ही तू देवी कहलाएगी। यह कह करके श्री प्रभुजी ने रामरती को दिव्य–साधन बतलाया और सिंहासन पर बैठकर उस साधन को करने की आज्ञा प्रदान की। रामरती ने ज्यों ही आसन लगा करके उस साधन को करना आरम्भ किया तत्काल उसकी वृत्ति अन्तर मुखी हो गयी।

श्री प्रभुजी की कृपा से रामरती कृतार्थ हो गयी। रामरती के बाप व भाई ने देखा कि श्री प्रभुजी ने रामरती को बिठाकर केवल मात्र उसके सिर पर अपना हाथ रखा है। जिससे तत्काल ही वह तन–मन की सुधि को खोकर समाधिस्थ हो गयी है। वह परम योगिनियों की तरह से आसनबद्ध होकर बैठी है। रामरती की यह स्थिति देख करके पिता पुत्र दोनों बड़े आश्चर्य में थे। उनके आश्चर्य को देख करके श्री प्रभुजी ने उनको समझाकर कहा कि भाई अब तुम निश्चिन्त रहो अब यह रामरती दुराचारणी लड़की नहीं रही। अब यह साक्षात् देवी हो गई है जो इसकी सेवा करेगा वह मन चाहा फल पाएगा। यह कहकर श्री प्रभुजी तीन रोज के लिए किसी साधू से मिलने के लिए चले गए।

तीन रोज बाद दुबारा लौटकर आए तो श्री प्रभुजी ने देखा कि रामरती उसी प्रकार बैठी है। यह देख करके उन करुणा सागर का हृदय अतिशय प्रसन्न हुआ और वहाँ आस–पास गांव वालों को कह दिया कि यह साक्षात् देवी है जो इसकी सेवा करेगा वह मनवांछित फल पायेगा। यह कहकर श्री प्रभुजी नैपाल–हिमालय को चले गये। श्री प्रभुजी के चले जाने के बाद रामरती की बिल्कुल निश्चेष्ट समाधि को देख करके लोग उसके दर्शनों को आने लगे। रामरती बिल्कुल चेतना शून्य रहती थी। हिमालय जाने से पूर्व श्री प्रभुजी ने स्वयं अपने हाथों से दूध

का एक कटोरा उसके मुंह से लगाया वह उसे प्रसन्नता से पी गयी थी और उसी प्रकार का आदेश लोगों को उन्होंने दे दिया था कि तुम लोग भी इसी प्रकार इसको दूध पिला दिया करना। इसी प्रकार की स्थिति में रहती हुई यह थोड़ा बहुत कुछ खा लिया करेगी। श्री प्रभुजी के उस आदेश को स्मरण करके उसी प्रकार लोग उसकी सेवा करने लगे। इस समाधि की स्थिति में ही रामरती के मुख से लोगों के लिए कई प्रकार के आशीर्वाद स्वत: ही निकल जाते थे और वह ज्यों के त्यों सफल हो जाते थे। बहुत से लोगों ने अपने मनोवांछित फल पा करके वहीं रामरती के स्थान पर शिवालय, धर्मशाला, और रामरती के बैठने की जगह पर भी एक अच्छा मठ बना दिया जिसमें बैठी हुई रामरती साक्षात् भवानी की तरह समाधिस्थ रहती थी। रामरती किसी से बोलती नहीं थी। केवल मात्र श्री प्रभुजी की अपार कृपा से जब किसी का भला होना होता था तो आशीर्वादात्मक वाणी ही उसके मुँह से निकलती थी। लगभग बारह साल तक रामरती उसी स्थान पर समाधिस्थ रही।

जब बारह साल बाद श्री प्रभुजी हिमालय से लौटकर किसी गाड़ी में जमुनियां घाट की तरफ से निकल रहे थे तब रामरती ने पहले ही ध्यान में देख लिया था कि आज वह परम कृपासागर श्री प्रभुजी हिमालय से लौटकर इधर आ रहे हैं। जो पल भर में महान् कृपा दान देकर के हिमालय को चले गए थे। श्री प्रभुजी के इस आगमन को देख करके सहसा बोल उठी और अपने पास बैठे लोगों से कहा अरे! जाओ स्टेशन भाग जाओ, इस गाड़ी में परम कृपा सागर मेरे गुरुदेव श्री प्रभुजी आ रहे हैं जो मुझे यहां अमर करके बैठा गए थे। उनको जल्दी से लिवा लाओ ताकि आँख खोलकर दर्शन कर लूं और अपने जीवन को सफल बना लूं।

रामरती के मुख से ऐसी वाणी सुन करके सत्संगी लोग तत्काल स्टेशन की ओर भाग उठे किन्तु उनके स्टेशन पर पहुँचने से  पहले ही श्री प्रभुजी को स्टेशन मास्टर ने पहले ही उतार कर बैठा लिया था। यह घोषणा पहले से काफी घोषित हो गई थी कि रामरती के गुरुदेव आ रहे हैं। इसलिए स्टेशन मास्टर के मन में यह तीव्र लालसा बन गई थी कि सबसे पहले वे ही कोई कृपामय आशीर्वाद प्राप्त करें जिससे सांसारिक-आदि व्याधि से छूट जायें। इसी बीच में शेष लोग गाड़ी देखकर लौट गए। उनको श्री प्रभुजी नहीं मिले। यह प्रार्थना उन्होंने रामरती से जाकर के कर दी कि देवी हमें आपके गुरुदेव इस गाड़ी पर नहीं मिले। उनकी विनय को सुन कर रामरती ने पुन: उनको आदेश दिया कि ऐसी बात नहीं है तुम लोग जाओ उन कृपानिधान जी को स्टेशन मास्टर ने अपने कमरे में बिठा लिया है वह किसी विशेष अलभ्य लाभ की इच्छा से ऐसा कर रहा है। तुम जाकर श्री प्रभुजी को विनयपूर्वक लिवा लाओ। मुझे स्टेशन पहुँचने की आज्ञा नहीं मिल रही है इसलिए विवशता से यहाँ बैठी हूँ। देवी रामरती की इस दूसरी आज्ञा को

पाकर के सत्संगी लोग उसी समय भागे गये और स्टेशन पर जाकर स्टेशन मास्टर का कमरा देखा तो पाया कि सचमुच स्टेशन मास्टर ने श्री प्रभुजी को बिठा रखा था और वह उनसे अपने स्वार्थ की अनुनय विनय कर रहा था। इससे अन्य सब लोग भी साहस के साथ स्टेशन पर पहुँच करके स्टेशन मास्टर के उसी कमरे में गए। लोगों ने प्रेम की तरंग में आकर के श्री प्रभुजी को अपने कंधों पर बैठा लिया और रामरती के स्थान की ओर ले चले। श्री प्रभुजी साधारणतः उन लोगों से कहते रहे अरे भाई कहाँ ले जा रहे हो रामरती कौन है? कहाँ है? लोगों ने प्रार्थना की प्रभो रामरती आपकी चरणधूलि है जिसको आप चलते–चलते समाधि का दान दे गए थे। वह लड़की अब देवी है। साक्षात् भगवती है। आपके दर्शन के लिए तड़प रही है आपके ही आदेश को पा करके वह यहाँ तक नहीं आई।

इस प्रकार की बातें करते हुए लोग श्री प्रभुजी को ले जा रहे थे तो श्री प्रभुजी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से यह आज्ञा दी कि अच्छा भाई अब तुम लोग हमें नीचे उतार दो। अब वह रामरती दौड़ती हुई आ रही है और वह सहसा हमारे चरणों से लिपट जायेगी। कदाचित् उद्वेग में उसको चरण स्पर्श न हो सका तो हो सकता है उसके शरीर को प्राण छोड़ दें। इसलिए तुम लोग हमें अपने कन्धों से नीचे उतार दो। यह आज्ञा पाकर ज्यों ही श्री प्रभुजी को लोगों ने कन्धे से नीचे उतारा त्यों ही लोगों ने देखा कि रामरती बड़ी तेजी के साथ दौड़ी आ रही है। उसको बड़े वेग से दौड़कर आती हुई देख करके श्री प्रभुजी ने लोगों को दूर कर दिया और रामरती श्री प्रभुजी के चरणों में लिपटकर बेहोश हो गयी। रामरती को बेहोश देखकर श्री प्रभुजी ने आज्ञा प्रदान की कि इसको तुम इसी हालत में उठाकर ले चलो। लोगों ने श्री प्रभुजी का आदेश पा करके रामरती को उठा ले गए और बड़े आदर के साथ उसको मठ में पहुँचा दिया। कई घण्टे बाद रामरती जब अपनी चेतना में आई तो श्री प्रभुजी ने रामरती की ओर देखकर कहा कहो रामरती यह तुमने क्या प्रपंच फैला रखा है। हम तो तुम्हें जंगल में बैठा गये थे आज तो यहाँ पर बड़े–बड़े मन्दिर शिवालय दिखाई दे रहे हैं। रामरती ने श्री चरणों में परम विनय के साथ उत्तर दिया हे! दीन वत्सल यह सब तो आप की ही महिमा है मैंने तो आँख खोल करके आपके ही दिव्य–दर्शन किये हैं। जिस समय आपने मुझे यहाँ जंगल में बिठाया था उस समय आपके कृपामय स्वरूप को देखते–देखते मैं ध्यान–मग्न हो गई थी। उसी कृपामय छवि को आज बारह साल बाद पुनः अपनी खुली आँखों से देख रही हूँ। इस बीच में जो अमूल्य निधि आप सौंप गये थे मेरा मन उसी में लीन रहा है। मुझे भी आश्चर्य है कि आपने यह कैसी अनुपम कृपा की है कि जिससे यहाँ पर यह विस्तार दिखाई दे रहा है। इसी प्रकार का वार्तालाप होता रहा। बाद में जब श्री प्रभुजी वहाँ से चलने लगे तो रामरती ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की

कि हे! दीनबन्धु मैं अब यहाँ नहीं रहना चाहती। कृपा करके अपनी इस चरणधूलि को अपनी कृपामय चरण कमलों के साथ रख लीजिए और कुछ सेवा करने का समय प्रदान कीजिए। रामरती के विचार श्री प्रभुजी के साथ जाने को जानकर लोगों के मन में बड़ा कष्ट हुआ क्योंकि वह उन लोगों के लिए साक्षात् देवी थी तथा उसके द्वारा उनका बड़ा भला हो रहा था।

लोगों ने मन ही मन और प्रत्यक्ष में भी श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि हे सर्व शक्तिमान प्रभो यह रामरती अब हमारे लिए जगदम्बा भवानी है। कृपा करके हमारे कल्याण के लिए इनको यहीं छोड़ दीजिए। श्री प्रभुजी ने उनकी दीन विनय को सुन करके और रामरती का वहीं रहना उचित समझ करके रामरती को पूरी–पूरी सान्त्वना दे कर और यह समझा कर कि रामरती हम वाही भी रहते हुए तुम्हारे पास ही रहेंगे, तुम्हरे हर कार्य को हर समय हम देखेंगे वहाँ से चले आए। श्री प्रभुजी के वहाँ से चले जाने के बाद उनके चरण कमलो वियोग का महाकष्ट रामरती को हुआ जिसके फलस्वरूप उसके मन में तीव्रतम वैराग्य झलक उठा और कुछ दिन वहाँ रहने के बाद रामरती भी वहाँ से कहीं वनों में निकल गई। रामरती के भक्त समुदाय में से जिस किसी को उनके कहीं दर्शन प्राप्त हुए किन्तु कोई भी यह जान न सका कि देवी रामरती आजकल कहाँ किस जंगल में वास करती है। रामरती के मुख से निकले वरदानों को पा करके वहाँ के स्त्री–पुरुष सर्व प्रकार से कृत कृत्य हो गए थे अत: उसकी अज्ञात वन वासनी हो जाने पर भी वे मन में बैठ करके निरन्तर उसका स्मरण करते रहते थे। आजकल भी रामरती के चिन्तन करने वाले लोग कहीं–कहीं मिलते हैं जिनको रामरती के किए हुए उपकारों का बराबर स्मरण है।

रामरती जितने दिन भी वहाँ रही लोगों ने उसको जगदम्बा भवानी के रूप में देखा। यह अनुपम तपस्विनी एवं परम योगिनी रामरती के सत्संग में जो भी आया उसने अलभ्य लाभ पाया। यह उन कृपायम की कृपा है जिसको निमित्त बना वे योग योगेश्वर कार्य करते हैं।

*संसार की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ एक अद्‌भुत ग्रंथ है। वेद, पुराण, गीता, बाइबिल इत्यादि सब इसी ग्रंथ के कुछ पन्ने हैं। हमें अतीत की बातों को ग्रहण करना होगा, वर्तमान की ज्ञान ज्योति का उपयोग करना होगा, और भविष्य में होने वाली ज्ञानवर्द्धक बातों को ग्रहण करने के लिए अपने ह्रदय द्वारों को सदैव खुला रखना होगा।*

–स्वामी विवेकानन्द

# दिव्य आरती (अर्थ सहित)

एक बार श्री गोपालानन्द जी महाराज श्री प्रभुजी से कहने लगे–

गौलोक धाम में आपकी यह आरती मैंने सुनी है जिस समय श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में तीन पद्य अर्थात् आधाभाग सुनाया तो प्रभु जी हँस पड़े बोले बेटा–तुम पूरी आरती नही सुन सके इसका आधा भाग जो शेष रह गया है उसको भी सुनो और फिर इसको नोट कर लेना फिर यही आरती सर्व साधारण में प्रचारित हो जायेगी एवं सभी लोग अपने–अपने घरों में इसको गा करके सुख–शान्ति पायेंगे। इस निबन्ध में सद्गुरु स्तुति के दो तीन श्लोक लिख कर नीचे वही आरती भावार्थ सहित लिखी जाती है जिसको पढ़कर हर साधक को आरती–पूजन की पुस्तक में लिखी जाने वाली इसी आरती एवं और शेष स्तुतियों को भावार्थ सहित जान लेने पर महान् सन्तोष होगा।

**अखण्ड मण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरं।**
**तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।।**

अर्थात् जिस व्यापक सत्ता ने अखण्ड मण्डलाकार अंड ब्रह्माण्डों को व्याप्त किया हुआ है उसके स्वरूप को जिसने दिखला दिया ऐसे श्री गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

**गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुः साक्षान्महेश्वरः।**
**गुरुरेकं परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।**

अर्थात् वे गुरुदेव ही ब्रह्मा हैं वही हैं विष्णु एवं वही देवाधिदेव महादेव हैं।

इसके अतिरिक्त साक्षात् पर ब्रह्म हैं। ऐसे श्री गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

**अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।**
**चक्षु रुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।।**

अर्थात् अज्ञान रूपी अंधेरे में ज्ञानाञ्जन की सलाई लगाकर जिन्होंने आँखें खोल दीं ऐसे गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

## दिव्य–आरती

**चरणारविन्दं गुरुदेव नमामि।**
**गुरुदेव शरणं गुरुदेव नमामि।।**

हम श्री गुरुदेव की शरण हैं और उनको नमस्कार करते हैं।

**भवो भव्यभावं त्रयताप हारं।**
**भवभय विनाशं गुरुदेव नमामि।।**

जो गुरुदेव भावातीत है एवं त्रयताप का नाश करने वाले, संसार के आधि व्याधि रूप सभी भय को दूर करने वाले है ऐसे गुरुदेव को नमस्कार है।

**कल्याण रूपं आनन्दकंद।**

**धारामृतं शिव गुरुदेव नमामि।।**

जो कल्याण के रूप है और आनन्द की जड़ है जो अनादि प्रवाह से अमृतमय स्वयं सदा शिव है उन गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

**अरेण्यं वरेण्यं सुरेशं रमेशं।**

**त्रयदेव रूपं गुरुदेव नमामि।।**

जो सब प्रकार से अर्चना करने योग्य वरेण्य जो देवताओं के मालिक एवं रमापति त्रयदेव रूप श्री गुरुदेव हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

**न जानामि जापं न जानामि ध्यानं।**

**पशुपति रूपं गुरुदेव नमामि।।**

मैं जप व ध्यान कुछ भी नहीं जानता हूँ पशुपति स्वरूप गुरुदेव आपको नमस्कार करता हूँ।

**भूतेश प्रणम्यं अनन्त स्वरूपं।**

**भक्तस्यत्राणं गुरुदेव नमामि।।**

हे अनन्त स्वरूप जिनको स्वयं भूतनाथ नमस्कार करते हैं भक्तों की रक्षा करने वाले श्री गुरुदेव मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

**घटाकाश गुप्तं महाकाश रूपं।**

**चिदाकाश व्यक्तं गुरुदेव नमामि।।**

हे घटाकाश में छिपे हुये महाकाश के रूप चिदाकाश के रूप में प्रगट होने वाले गुरुदेव मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

**अकल्पं अनूपं तपन्तं दिगन्तं।**

**अगोगौचराणं गुरुदेव नमामि।।**

जो कल्पनातीत हैं और उपमा रहित हैं जिनका तेज दिग–दिगान्तरों में फैला हुआ है। जिनको सर्व साधारण प्राप्त नहीं कर सकता ऐसे गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

**सिद्धि अगम्यतव पाद पद्मे।**

**प्रबुद्धं शुभेशं गुरुदेव नमामि।**

हे गुरुदेव आपके पवित्र चरण कमल केवल मात्र सिद्धियों के प्राप्त करने से ही पाये जा सकते हैं प्रबुद्ध कल्याणों के मालिक मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

## कुछ चमत्कारी संस्मरण

# अवधूत योगी श्री तैलंग स्वामी

(स्वामी श्रीदत्त योगेश्वर देवतीर्थ)

तैलंगस्वामी काशी में आये थे तब वे अस्सी घाट पर निवास करते थे। उनका अधिकांश समय एकान्त में ही व्यतीत होता था। वे जन समुदाय से दूर ही रहा करते थे। कभी-कभी वे गंगा किनारे के घाटों पर घूमने निकला करते थे। एक दिन वे इसी प्रकार घूमने निकले थे। तुलसी घाट के समीप तुलसी दास के बगीचे के पास उन्होंने देखा कि एक कोढ़ी व्यक्ति कुष्ट रोग से आक्रान्त था और मरणासन्न था। उसे देखकर तैलंगस्वामी दयार्द्र हो उठे और रोगी के समीप बैठकर उसके देह पर हाथ फिराने लगे। कुछ ही क्षणों में इसका परिणाम आश्चर्यजनक निकला। रोगी की वेदना निवृत्त हुई और वह पूर्ण रोग मुक्त होते ही उठ बैठा। समीपस्थ स्वामी जी के चरण युगल पर अपना मस्तक रखता हुआ उन्हें अश्रुप्लावित करने लगा। यह देखकर वहां पर लोगों की भीड़ जमा होने लगी। स्वामी जी को यह उचित प्रतीत न हुआ। अतः उन्होंने वहां से चुपके से प्रस्थान किया। इस प्रकार उन्होंने जनहिताय योगविभूति का चमत्कार करने पर भी अपने को लोगों की प्रशंसा से दूर कर लिया।

इस प्रकार की एक और घटना कुछ दिन बाद घटी। एक बंगाली सज्जन क्षय रोग से ग्रस्त थे। रोग असाध्य था। वैद्य, डॉक्टर, हकीमों ने जवाब दे दिया था। उस बेचारे के लिए भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई आधार ही नहीं था। मरीज अब गंगा के किनारे निवास करने लगा। गंगा स्नान, गंगाजल पीने और भगवान के नाम का जप—इनको ही औषधि मानकर वह जीवन के शेष दिन बिताने लगा। एक दिन सद्भाग्य से उसे तैलंगस्वामी का दर्शन हुआ। उनके सम्मुख उसने अपना दुःख प्रकट किया। तैलंगस्वामी दया से भर गये और उस सज्जन की छाती पर हाथ रखते हुए कुछ क्षण तक उसके समीप आँखें मूंद कर बैठे रहे। आश्चर्य हुआ ही। वह बंगाली सज्जन उसी दिन से रोगमुक्त हो गया।

एक दिन सायं काल में जब तैलंगस्वामी जी अस्सी घाट पर एकान्त साधना में डूबे थे तब सहसा उनके कानों पर किसी युवती के हृदय विदारक रुदन की आवाज पड़ी। स्वामी जी ने आँखें खोलकर आवाज की दिशा में दृष्टिपात किया। दृश्य करुण था। जब वे उठ कर घटनास्थल पर पहुँचे तब पता चला कि एक नवविवाहित युवक को, जो सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त हुआ था, बांधकर उसके स्वजन वहाँ पर ले आये थे। और मृत देह को गंगा में प्रवाहित करने की तैयारी कर रहे थे। मृत युवक की युवती पत्नी अपने आकस्मिक वैधव्य से छाती पीटती हुई जोर जोर से रुदन कर रही थी। तैलंगस्वामी के लिए यह अत्यन्त असह्य सा हुआ।

अतः उन्होंने मृतदेह का स्पर्श कर जिस स्थान पर सर्पदंश हुआ था उसी पर गंगा मिट्टी का लेप कर दिया कुछ ही क्षणों में मृत युवक जीवित हो गया और अंगड़ाई लेकर उठ खड़ा हुआ। जबकि तैलंगस्वामी गंगा में कूद कर तैरते हुए बहुत दूर निकल गये। इस प्रकार से उन्होंने स्वयं की सिद्धि का प्रदर्शन करते हुए भी गुप्त रखा।

कई श्रद्धा–भक्ति सम्पन्न व्यक्ति तैलंगस्वामी जी को अपने घर पर भोजन कराने के हेतु ले जाया करते थे। एक दिन श्रीयुत केदारनाथ वाचस्पति नामक एक बंगाली भक्त के निमन्त्रण पर वे उनके घर भिक्षा के लिए गये। केदारनाथ ने बड़े स्नेह से उन्हें भोजन कराया। भोजनोपरान्त स्वामी जी के लिये पेय जल लाने के लिए वह अपने घर में गया। जब वह जल लेकर आया तो देखता है कि बाहर तैलंगस्वामी जी आनन्द से जल पी रहे थे। यह देखकर वह समझ न सका कि वहां पर उसके एवं स्वामी जी के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति था ही नहीं फिर भी किसने स्वामी जी को इतनी शीघ्र जल ला दिया।

भारत के किसी एक स्टेट का राजा अपने राज कुटुम्ब के साथ काशी यात्रा के लिए आया था। दूसरे दिन सोमवार होने से उसने सपरिवार दशाश्वमेध घाट पर गंगा स्नान करने का निश्चय किया। महिलाओं के लिए चारों ओर परदे बांध दिये गये ताकि बाहर का व्यक्ति अन्दर मे स्नान कर रही महिलाओं को देख न सके। एक ओर महिलाएँ स्नान कर रहीं थीं उस समय महिला कक्ष में दिगम्बर अवस्था में तैलंगस्वामी को खड़े देखकर राज परिवार की महिलाएँ अतीव लज्जित हुईं और क्रोधावेश में आकर राजा को इस घटना से अवगत कराया। राजा ने क्रोधाग्नि बरसाते हुए अपने सिपाहियों को आदेश दिया कि दिगम्बर आदमी को पकड़ कर अपने राजभवन में बन्द कर दो। आदेश का तुरन्त ही पालन हुआ। बाद में राजा ने अपने निवास स्थान में जाकर दिगम्बर श्री तैलंगस्वामी से आग बबूला होकर कई प्रश्न किये किन्तु प्रत्युत्तर एक भी न मिला। तैलंगस्वामी जड़वत्, शिलावत् अचल शान्त थे। आखिर राजा ने गाली–गलौज करते हुए अपमानित कर उन्हें वहाँ से बन्धनमुक्त कर दिया। कहते हैं कि उसी रात्रि को राजा ने एक भयावह स्वप्न देखा जिसमें जटा जूट धारी भगवान् श्री काशी विश्वनाथ ने उसके समक्ष आ उपस्थित होकर त्रिशूल दिखाकर और आँखों से क्रोधाग्नि बरसाते हुए गर्जना भरे शब्दों में कहा ''तूने जो तैलंगस्वामी का घोर अपमान किया है वह मेरा ही अपमान है अतः शीघ्र उनके पास जाकर उनसे क्षमायाचना कर या तुरन्त ही काशी छोड़ कर चला जा''। इस भयंकर स्वप्न को देखने से राजा की निद्रा भंग हो गई और शेष रात्रि उसने अपने शयन खण्ड में इधर–उधर टहलते हुए ही व्यतीत की। प्रातः काल होते ही उसने अपने सिपाहियों को साथ में लेकर तैलंगस्वामी को खोजते हुए पंचगंगा घाट पर उनके दर्शन किये। उनसे क्षमा प्रार्थना की और चंदन–कुंकुम, फल–फूलों से उनकी पूजा कर आशीर्वाद मांगा। स्वामी जी ने प्रसन्न मुद्रा में आशीर्वाद देते हुए उसके मस्तक पर अपना वरद हस्त रख दिया। राजा स्वयं

को धन्य समझता हुआ स्वस्थान गया। एक घटना इस प्रकार की है–उज्जैन का राजा काशी यात्रार्थ आया था। काशी नरेश से निमन्त्रण पाकर वह उनसे मिलने एवं साथ में भोजन करने के हेतु राम नगर से नौका द्वारा काशी वापस लौट रहा था। उस समय उसने गंगा के प्रवाह में एक बड़े भारी देह वाले व्यक्ति को पद्मासन लगाकर सोया हुआ देखकर आश्चर्य व्यक्त किया। नाविकों से इस विषय में पूछताछ करने पर पता चला कि ये काशी के सिद्ध महात्मा माने जाते हैं, बड़े चमत्कारी हैं। राजा की उनसे कुछ चमत्कार देखने की इच्छा होने पर नौका उनके समीप ले आयी गयी। राजा की प्रार्थना पर वे नौका में आ बैठे। बाद में राजा ने कुछ चमत्कार दिखलाने के लिए उनसे विनती की फलस्वरूप उन्होंने राजा की बहुमूल्यवान तलवार दिखाने की इच्छा प्रकट की। यह तलवार राजा को शौर्य के प्रतीक रूप में ब्रिटिश सरकार द्वारा भेंट की गयी थी। तैलंगस्वामी ने इस बहुमूल्य तलवार को इधर–उधर देखते हुए गंगा में फेंक दिया।

यह देख राजा आग बबूला ही हो गया। आंग्लभाषा में गालियां बरसाने लगा और हाथ–पैर पटकने लगा। किन्तु इसका लेषमात्र भी प्रभाव तैलंगस्वामी पर न पड़ा। वे तो शांत, धीर, गम्भीर भाव से बैठे रहे जैसे कि कुछ हुआ ही न हो। मणिक कर्णिका घाट पर नौका आ पहुंचते ही जब स्वामी जी नौका से उतरने लगे तब राजा ने क्रोधावेश में उनका हाथ पकड़ा और चिल्लाते हुए कहा कि मेरी तलवार दे दो अन्यथा मैं तुम्हें जेल में बन्द करवा दूँगा। स्वामी जी ने गंगा में हाथ डालकर दो तलवारें निकालते हुए राजा को संकेत द्वारा कहा कि इनमें से जो तलवार तुम्हारी हो उसे पहचान लो। यह देख राजा तो अवाक् रह गया। दोनों ही तलवार एक समान थीं। अपनी तलवार को पहचानना राजा के लिए कठिन तो क्या असम्भव हो गया। राजा की इस विचित्र–सी अवस्था को देखकर स्वामी जी ने गंगा–तीर पर की मिट्टी पर अक्षर लिखते हुए राजा को उपदेश दिया कि "जिस वस्तु को तू स्वयं पहचानता नहीं है उसे मेरी–मेरी कहने में तुझे लज्जा नहीं आती? यह देह भी तो तेरी नहीं है। क्योंकि वह भी तेरे साथ में नहीं जायेगी। यहां पर ही अन्तिम समय में छूट जायेगी। इसलिए क्रोध करना छोड़ दे और सतोगुणी बनने का प्रयत्न कर। क्षणिक सुख प्रदायक भोगों में अमूल्य जीवन मत बरबाद कर। 'मैं' स्वरूप जो भगवान् है उनका साक्षात्कार करके जीवन सफल बना ले।"

इस प्रकार उपदेश देने के उपरान्त दो में से एक तलवार को राजा को दे दिया और दूसरी तलवार को गंगा में फेंक कर स्वामी जी ने वहां से पंचगंगा घाट की ओर प्रस्थान कर दिया। कहते हैं कि इस घटना का राजा पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा फलस्वरूप उसके जीवन में भारी परिवर्तन हो गया।

एक बार विजयनगरम् के राजा साहेब तैलंगस्वामी को श्रद्धा–भक्ति पूर्वक अपनी कोठी में ले गये और उनको स्नान कराकर कीमती वस्त्र और आभूषण पहनाकर चंदन, कुंकुम और पुष्पमाला से उनका सविधि पूजन किया। बाद में अपने ही हाथों से उनके मुख में सुस्वादु भोज्य

पदार्थ देते हुए अच्छी तरह से भोजन कराया और सम्मानपूर्वक विदाई दी। जब तैलंगस्वामी जी मार्ग पर जा रहे थे उस समय किसी एक निर्धन व्यक्ति ने उनके समक्ष आकर गरीबी व्यक्त करते हुए उन्हीं को पहनाये गये वस्त्र, आभूषण इत्यादि उतार लिये और चल दिया। राजा को इसका पता चलने पर वह स्वामी जी के पास आया और इस घटना पर अपना दुःख व्यक्त किया। इस पर स्वामी जी ने मुस्कराते हुए लिख कर समझाया कि भगवान् ने दिया था और भगवान् ले गये। जब एक बार वे वस्तुएँ समर्पित कर दी गयी तब वे मेरी हो गयीं थीं अतः तुम्हें दुःखी होने की क्या जरूरत है। स्वामी जी ने इस प्रकार का उपदेश देकर राजा को समर्पण भाव का गूढ़ रहस्य समझाया जिससे उसे शांति मिली।

तैलंगस्वामी जी दिगम्बर अवस्था में ही रहते थे और प्रायः गंगा के घाटों पर ही विचरण किया करते थे। भक्तों के आग्रह से वे कभी-कभी शहर में उनके घरों पर भी जाया करते थे। इस प्रकार एक बार वे एक भक्त का निमन्त्रण स्वीकार कर शहर के मार्ग से जा रहे थे तब पुलिस ने उन्हें इस प्रकार से विवस्त्र घूमने पर आपत्ति उठायी और पकड़ कर जेल में भिजवा दिया। इस घटना का पता जब स्वामी जी के भक्तों को चला तब उन्होंने स्वामी जी को मुक्त करवाने के हेतु कोर्ट में दरखास्त दी। दूसरे दिन स्वामी जी कोर्ट में लाये गये। भक्तों की ओर से वकील रखा गया था तथा उसने अंग्रेजी न्यायाधीश को बताया कि स्वामी जी तो अवधूत हैं। उनके लिए वस्त्र पहनना या न पहनना, अमुक पदार्थ खाना या न खाना, शीत-उष्ण, हर्ष-शोक वगैरह सब समान हैं। यह सुनकर न्यायाधीश को स्वामी जी की परीक्षा लेने की इच्छा हुई। उसने पूछा कि मैं जो कुछ खाऊंगा वह तुम्हारे स्वामी खा सकेंगे? यह सुनते ही तैलंगस्वामी ने मस्तक हिलाते हुए स्वीकृति दी और साथ ही साथ इशारे में पूछ दिया कि पहले जो कुछ पदार्थ ये खायेंगे वह न्यायाधीश को भी खाना पड़ेगा। न्यायाधीश ने इस चुनौती को सहर्ष स्वीकार कर लिया क्योंकि उसे विश्वास था कि भारतीय साधु पुरुष फल दूध, आटा दाल-चावल इत्यादि सात्विक आहार ही ग्रहण करेगा। उसे मांस-मछली-अण्डे या मद्य खाने-पीने में भी कोई आपत्ति न थी क्योंकि वह तो उसका प्रतिदिन का आहार था। चुनौती के अनुसार स्वामी जी को पहले अपना खाना बताने का आदेश हुआ। यह सुनते ही उन्होंने खड़े-खड़े ही अपने हाथ पर मल त्याग किया और खाने लगे। अंग्रेज न्यायाधीश के लिए यह दृश्य देखना तक असह्य हो गया अतः अपना मुँह घुमा लिया और स्वामीजी को तुरन्त ही मुक्त कर देने का आदेश दिया।

ऐसा ही प्रसंग कुछ वर्षों के बाद फिर एक बार आया। उस समय एक नवनियुक्त अंग्रेज न्यायाधीश काशी में आया था। कहते हैं कि वह नगर में कानून और शिष्टता का चुस्ती से पालन करने का हिमायती था और स्वभाव का भी बड़ा तेज था। जनता उससे बहुत डरती थी। एक दिन जब वह अपनी मेम साहब को साथ लेकर घोड़ा गाड़ी द्वारा नगर के प्रधान मार्ग पर जा

रहा था उस समय एक स्थान पर उसने सामने से दिगम्बरावस्था में चले आ रहे तैलंगस्वामी जी को देखा। मेम साहब तो यह देखकर क्रुद्ध हो गयी और अपने पति को डांटती-फटकारती कहने लगी कि तुम्हारे रहते हुए भी इस नगर में कानून और शिष्टता की ऐसी दुर्दशा है। पत्नी का कटाक्ष पति के लिए असह्य था। उसने घोड़ागाड़ी रुकवा कर समीपस्थ पुलिस थाने से बुलवाया और आदेश दिया कि उस नंगे धड़ंगे साधु को तुरन्त पकड़कर जेल में बन्द करो और उसे कल प्रात: कचहरी में हाजिर करो। आदेश का शीघ्र ही पालन हुआ। पुलिस ने स्वामी जी को पकड़कर जेल में बन्द कर दिया किन्तु वहां पर एक आश्चर्य की घटना घटी। पुलिस देखती है कि जेल के कमरे का द्वार बन्द है और बाहर मजबूत ताला लगा हुआ है जब कि तैलंगस्वामी जेल के बाहर के बरामदे में मस्त होकर घूम रहे हैं। जब उन्हें दो-तीन बार पकड़-पकड़कर जेल में बन्द कर देने पर भी वे बाहर घूमते हुए दिखायी पड़े तब हारकर पुलिस ने यह घटना अंग्रेज न्यायाधीश के कान तक पहुँचायी। इस पर न्यायाधीश ने स्वयं आकर इस बात की सत्यता की परीक्षा की और तैलंगस्वामी से क्षमा-याचना करते हुए उन्हें सम्मानपूर्वक वहां से विदा दी। जाते हुए स्वामी ने उस अंग्रेज न्यायाधीश को इंगित द्वारा उपदेश किया कि अपनी इच्छा शक्ति को नियंत्रित करने पर सब चमत्कार किये जा सकते हैं। इच्छा होते देह जेल से बाहर निकाली जा सकती है, अदृश्य भी की जा सकती है, और एक ही समय में कई स्थानों में विभिन्न रूपों में दिखायी भी जा सकती है। कहते हैं कि स्वामी जी की योग शक्ति ने न्यायाधीश बहुत प्रभावित हुआ था। बाद में उसने इस प्रकार का एक आदेश पत्र लिख कर स्वामी जी के भक्तों को दिया था जिससे भविष्य में कोई भी व्यक्ति स्वामी जी को किसी भी प्रकार से परेशान न कर सके।

एक शिक्षित सज्जन ने जो काशी यात्रार्थ आया था, किसी से सुना था कि ''तैलंगस्वामी जी तो साक्षात् विश्वनाथ हैं'' किन्तु इस बात पर विश्वास न होने से उसने स्वयं इसकी सत्यता खोजने का निर्णय किया। वह कहीं से 108 अच्छे और बड़े बिल्वपत्र ले आया और प्रत्येक पर चंदन से स्वहस्त से प्रणवयुक्त 'नम: शिवाय' मन्त्र लिख दिया। बाद में विश्वनाथ के मन्दिर में जाकर शिवलिंग पर उन समन्त्रक बिल्व-पत्रों को चढ़ा दिया और भगवान् को प्रणाम करके वहां से सीधा पंच गंगा घाट पर आया जहां पर तैलंगस्वामी एक शिला पर बैठे हुए थे। स्वामी जी को देखते ही वह अवाक् रह गया। देखा कि उनके मस्तक पर वही मंत्र युक्त कुछ बिल्व पत्र विभूषित थे और कुछ उनके चारों ओर बिखरे पड़े थे जिन्हें उसने कुछ समय पहले ही विश्वनाथ जी के शिवलिंग पर चढ़ाये थे। अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि तैलंगस्वामी काशी के सचल विश्वनाथ हैं। गद्‌गद् होकर उसने स्वामीजी के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया और अपनी अल्प बुद्धि द्वारा उनकी महानता नापने से मूर्खतापूर्ण प्रयत्न के लिए उनसे क्षमा याचना की। कहते हैं कि बाद में स्वामी जी ने उसे कुछ योग क्रियाएँ समझायी थीं। फलस्वरूप

उसको जीवन में शांति प्राप्त हुई थी।

तैलंगस्वामी जी के सेवकों में एक बंगाली ब्रह्मचारी था जिसका नाम था उमाचरण मुखोउपाध्याय। उसने कई वर्षों तक स्वामी जी की श्रद्धा-भक्ति पूर्वक सेवा सुश्रुषा की थी। एक दिन जब स्वामी जी बेनी माधव के मन्दिर के समीप की अपनी गुफा में अकेले बैठे हुये थे तब उमाचरण ने स्वामी जी से प्रार्थना की थी कि वे उसे आज के ही शुभ दिन पर भगवती मंगलागौरी के दर्शन करवा दें। यह सुन कर स्वामी जी ने उसे कहा कि ऊपर के कमरे में जाकर देख आओ कि वहाँ पर मंगलागौरी की मूर्ति प्रतिष्ठित है या नहीं। उमाचरण ने कमरे में जाकर देखा कि श्याम वर्ण के पत्थर की सुन्दर मूर्ति, जिनकी वह प्रतिदिन पूजा करता है वह, अपने स्थान पर पूर्ववत् खड़ी थी। गुफा में आकर उसने स्वामी जी को वृतान्त सुनाया। बाद में स्वामी जी भावावेश में आकर अश्रु बहाते हुए शिशुवत् पुकारने लगे- 'माता मंगलागौरी। यहां पर आओ-मां गौरी। यहां आ जाओ।' इतने में तो किसी के पैरों के नूपुर की मधुर आवाज सुनायी पड़ी और कुछ ही क्षणों के उपरान्त वहां पर एक छोटी-सी सुन्दर सुकोमल कुमारिका शृंगार सजकर आ उपस्थित हुई। उनके आगमन से ही गुफा में चारों ओर प्रकाश फैल गया, अपूर्व सुगन्ध का प्रसरण हुआ, वातावरण में आनन्द ही आनन्द छा गया। अब उमाचरण समझ नहीं पा रहा था कि क्या किया जाये। उसकी किंकर्तव्यमूढ़ता देखकर स्वामी ने उसे कहा कि देवी की पूजा की तैयारी कर। देख देवी आकर खड़ी है। यह सुनकर उमाचरण होश में आया। उसे आज ऐसा अनुभव हो रहा था कि कई जन्मों की गाढ़ी निद्रा से वह जाग्रत हो रहा है। आज गुरु कृपा एवं इष्ट देवी की कृपा एक साथ ही उस पर बरस रही थी अतः उसने स्वयं को बड़ा ही भाग्यवान् समझा। पूजा की सर्व तैयारी कर लेने के उपरान्त उसने गुरु की आज्ञा लेकर बड़े ही भकित भाव से, हर्षाश्रु बहाते हुए, भगवती मंगला गौरी की सविधि पूजा की, प्रसाद निवेदन किया, आरती की और स्तवस्तोत्रादि पाठकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुए आत्मनिवेदन का भाव प्रकट किया। पूजा समाप्त हो जाने पर श्री तैलंगस्वामी ने पुनः भाव-विभोर होकर देवी की ओ र हाथ जोड़ते हुए नत मस्तक होकर कहा-

''मातः! अब तुम स्वस्थान में लौट जाओ।'' उनके शब्द का आश्चर्यकारक प्रभाव पड़ा। जैसे भगवती आयी थीं वैसे ही पैरों के घुंघरू की आवाज से वायुमण्डल को ध्वनित करती हुई वापस लौट गयीं और कमरे में जाकर अपनी वेदी पर खड़ी होकर पुनः पत्थर की मूर्ति रूप में रूपांतरित हो गयी। शिष्य उमाचरण के लिए तो यह अनुभव अद्भुत था। उसने स्थूल चक्षुओं द्वारा भगवती के दिव्य देह का दर्शन किया था, सीमा में रहकर भी असीम का साक्षात्कार किया था। उसने आज गुरु की महान् शक्ति का अनुभव किया था जिससे उसके रोम-रोम में आनन्द रम रहा था। धन्य है शिष्य उमाचरण। बंगाल के प्रसिद्ध संतपुरुष श्री विजय कृष्ण गोस्वामी को प्राथमिक दीक्षा श्री तैलंगस्वामी जी से ही प्राप्त हुई थी। तत्पश्चात् वे कई दिन तक अपने गुरु

के सान्निध्य में रहे थे और रहस्यमयी योग साधना की थी। उन्होंने अपने इस विषय के अनुभव एक ग्रन्थ में लिखे हैं।

दक्षिणेश्वर के सुप्रसिद्ध सन्त श्री रामकृष्ण परमहंस ई. सं. 1869 में अपने परम गुरु (अर्थात् उनके तांत्रिक गुरु भैरवीमाता के भी गुरु देव) श्री तैलंगस्वामी के दर्शनार्थ काशी आये थे। उस समय उनके साथ उनके कई भक्त लोग भी थे।

रामकृष्ण–प्रेम किसे कहते हैं?

तैलंगस्वामी–अपने इष्टदेव के नाम–जप कीर्तनादि में एकता न होने पर नयनों से जो अश्रुधारा बहती है उस समय की उस अवस्था को प्रेम कहते हैं।

कहते हैं कि इस प्रकार के सत्यसार–युक्त संक्षिप्त उत्तर पाकर श्री रामकृष्ण की भाव समाधि लग गयी थी। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु धारा बहने लगी और तालियाँ देते हुए वे वर्तलाकार नाचने लगे थे।

दूसरे दिन श्री रामकृष्ण परमहंस की इच्छा अपने परमगुरु श्री तैलंगस्वामी को मिष्टान्न की भिक्षा देने की हुई। उन्होंने अपने सेवक श्री मथुराबाबू द्वारा बाजार से आधा मन पायस् मंगवाया और उसे लेकर तैलंगस्वामी के ब्रह्मघाट स्थित मठ में गये। उस समय स्वामी जी पूर्ववत् शांतभाव से बैठे थे। श्री रामकृष्ण ने उन्हें भोजन कराने की अपनी इच्छा व्यक्त की और आदेश पाने पर वे प्रसन्नचित्त होकर स्वामी जी को स्वहस्त से पायस् खिलाने लगे। कहते हैं कि अल्प समय में ही वे आधामन पायस खा गये। इस घटना से उपस्थित सर्व लोग आश्चर्यान्वित हो गये। बाद में श्री रामकृष्ण ने अपने भक्तों के साथ श्री तैलंगस्वामी जी की प्रदक्षिणा की और उनका आदेश पाकर वहां से चलकर अपने निवास स्थान पर आये।

श्री तैलंगस्वामी ने ई. 1877 में अपने शिष्य और भक्तों को बता दिया था कि अब उनके जीवन का कार्य प्राय: समाप्त हो गया है अत: पांच वर्ष के भीतर ही वे स्वेच्छा से देह त्याग कर देंगे।

समय को जाने में कोई देरी नहीं लगती। देह त्याग का अपना समय केवल एक मास बाकी था। इस बीच उन्होंने अपने शिष्य एवं अधिकारी भक्तों को उपदेश, योग क्रिया का मार्ग दर्शन इत्यादि देकर उन लोगों पर परपथ प्रशस्त किया। काशी में विद्वानों को बुलाकर विद्वत् सभा का अयोजन कर शास्त्र चर्चा एवं शंकाओं का निवारण किया। अपने देह त्याग के पश्चात् देह को किस प्रकार से पत्थर–की पेटी में बन्द करके श्रीदत्त पादुका नामक स्थान पर से उसे गंगा में जलसमाधि देना इत्यादि भी समझा दिया। बाद में वे अपनी गुफा में चले गये और द्वार बन्द करते हुए आदेश दिया कि जब तक वे अन्दर से गुफा का द्वार न खोलें तब तक कोई व्यक्ति बाहर से द्वार को न खटखटावे और न शोरगुल मचाकर विक्षेप करे। यह समाचार शहर में फैलने पर वहां लोगों की भीड़ जमा होने लगी। सब लोग गुफा का द्वार खुलने की प्रतीक्षा करने

लगे। जब मध्याह्न का समय बीत गया तब सहसा द्वार खुला। श्री तैलंगस्वामी का समग्रदेह अलौकिक दिव्य आभा से दीप्त था। वे बाहर आये, उपस्थित असंख्य लोगों को आशीर्वाद दिया और पंचगंगा घाट की ओर चल पड़े। सबने उनका अनुसरण किया। पत्थर की पेटी एवं अन्यान्य वस्तुएँ पूर्व निर्देश के अनुसार घाट पर पहले से ही पहुंचवा दी गयी थीं। स्वामी ने वहां पहुंच कर अपने दोनों हाथ ऊँचे करते हुए सबको पुनः आशीर्वाद दिया और पत्थर की बड़ी पेटी में पद्मासन लगाकर बैठ गये। उनके आदेशानुसार पेटी को बड़ी भारी पत्थर की शिला से बन्द कर दिया गया। कहते हैं कि जब पेटी को लेकर नौका गंगा की गोद में तैरने लगी तब पेटी में से दिव्य प्रकाश बाहर निकलकर आकाश में चले जाते हुए असंख्य भक्तों ने देखा। ''हर हर महादेव'' और ''बाबा विश्वनाथ की जय'' के साथ ही साथ ''तैलंगस्वामी महाराज की जय'' की गगनभेदी ध्वनि से समस्त वायुमण्डल गूँज उठा।

ई. सन् 1881 की पौष शुक्ला एकादशी और रोहिणी नक्षत्र वाले शुभदिन, संध्या समय से पहले ही, महायोगी अवधूत श्री तैलंगस्वामी ने स्वेच्छापूर्वक इह–लीला समाप्त कर दी। जिस मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र एवं दिन को उन्होंने जन्म लिया था उसी मास–पक्ष, तिथि नक्षत्र एवं दिन को उन्होंने स्वेच्छा से देह त्याग किया। उन्होंने आत्म साक्षात्कार करने के उपरान्त जन कल्याण करते हुए 280 वर्ष की परिपूर्ण आयु एक महान् योगी की तरह बितायी थी।

कहते हैं कि जिस समय उनके देह वाली पत्थर की पेटी गंगा में डुबोयी जा रही थी ठीक उसी समय स्वामी जी के कुछ विशिष्ट भक्तजन कलकत्ते से वहां आ पहुंचे। उन सब भक्तों को अपने गुरुदेव का मुख दर्शन करना था। अतः उनके अतीव आग्रह से पेटी को खोला गया। किन्तु अन्दर देखने पर वहां स्वामी जी का मृत देह नहीं था। केवल कुछ सुगन्धित पुष्प मालायें दिखायी पड़ीं। इस अद्‌भुत घटना से सब जन अवाक् रह गये। स्वामी जी ने यह आखिरी चमत्कार बतलाकर लोगों को स्पष्ट कर दिया कि उनका देह पार्थिव होने पर भी चिन्मय था। मानव रूप में वे महामानव थे, सिद्ध पुरुष थे।

पत्थर की पेटी पुनः बन्द करने के पश्चात् गंगा में डुबायी गयी। लोग कहने लगे कि उन्हीं को जल समाधि दी गयी, वे जल में जलरूप बन गये।

उसी संध्या के समय असंख्य लोगों ने स्वामी जी का स्मरण करते हुए गंगास्नान किया। घाटों पर कुम्भ मेला जैसा दृश्य हो गया था। प्रत्येक जन के मुख से यही बात बार बार निकल रही थी–''आज काशी का सचल विश्वनाथ कैलास धाम को चला गया।''

धन्य है ऐसा संतपुरुष। धन्य है संतभूमि भारत। धन्य है अविमुक्त क्षेत्र काशी।

# जप विज्ञान

अनिल दुबे–दतिया (म. प्र.)

हमारे आराध्य देव प्रभुजी गुरुजी को वंदन नमन। श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम जप, ध्यान की पद्धति का केन्द्र बिन्दु है। गुरुदेव भगवान ने अपने शिष्यों को जप ध्यान की शिक्षा प्रदान की है। जो अपने आप में सर्वोपरि है। भगवत् दर्शन, मोक्ष, मुक्ति, निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति के पूर्व अधिकांश योगी, संत, महात्मा, ऋषियों को भी आध्यात्मिक अभ्यास या साधनाओं से होकर गुजरना पड़ा है। इस मार्ग पर चाह रखने वालों के द्वारा भगवत प्राप्ति के लिए अपनाये जाने वाले साधनों में प्रार्थना, ध्यान, गुरुदेव के पवित्र नाम का जप, आरती पूजा इत्यादि कुछ प्रभावशाली साधन हैं।

भगवान के तत्काल दर्शन एवं साक्षात्कार करने के लिए जप एक सरलतम और सुरक्षित साधन है। जहाँ तक भगवत साक्षात्कार का प्रश्न है, यह साधन मनुष्य, धनी–निर्धन, शिक्षित–अशिक्षित ऊँच–नीच में कोई विभेद नहीं करता। कोई भी व्यक्ति जप कर सकता है तथा इस साधन के द्वारा जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है परन्तु उसके लिये आवश्यक है एकाग्रता निष्ठा, श्रद्धा और दृढ़ विश्वास इनके बिना जप निरर्थक और निष्फल होता है। गीता में भगवान ने बतलाया है कि श्रद्धा साधक की माँ की तरह रक्षा करती है।

**जप क्या है**–जप एकान्त में मौन रहकर अपने गुरुदेव या इष्टदेव के पवित्र नाम की सतत् पुनरावृत्ति करना है। जिस इष्टदेव या भगवान का नाम जपा जा रहा है वह एक ही तत्व है। अर्थात् नाम और नामी एक ही हैं।

जब हम अपने गुरु मंत्र का या इष्टदेव के नाम का बार–बार स्मरण या उच्चारण करते है तो उस नाम धारण करने वाले गुरुदेव, इष्टदेव के विशेष गुणों की शक्ति, महानता और स्वरूप का चित्र हमारे मन चक्षु के समक्ष उपस्थित हो जाता है। जप करते समय उसके अर्थ का भी मनन करना चाहिए। इसमें संदेह नही कि जप को इस विधि से करने में प्रारम्भ में कुछ कठिनाई होगी, परन्तु कुछ दिनों बाद निरन्तर अभ्यास से साधक को सफलता अवश्य ही मिलती है उसे अधीर नहीं होना चाहिए। अधीरता उसकी प्रगति में रोड़े खड़े कर देगी। मानव के अवचेतन मन में उसके गत संचित कर्मों के अच्छे, बुरे संस्कार बीज रूप में भरे पड़े हैं। जो आध्यात्मिक मार्ग में बाधक बनकर खड़े हो जाते हैं। यदि साधक इन विरोधी शक्तियों से जूझने की सोचता है तो स्वाभाविक है कि उसकी शक्ति का बड़ा भाग इस संघर्ष में उसे व्यय करना पड़ेगा।

अतः साधक को इनकी उपेक्षा करना चाहिए और अपनी पूरी शक्ति अपने गुरु मन्त्र एवं इष्टदेव के निरन्तर स्मरण में ही लगाना चाहिए। इस प्रकार यह पद्धति शीघ्र ही उसे गोक्ष तक

पहुँचा देगी।

जप से साधक का मन और शरीर पवित्र हो जाया करता है और उसकी निर्मलता उसे धीरे–धीरे अपने मन को नियंत्रण में रखने, शान्त रखने में सहायक होती है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता (2/48) में समत्वं योग उच्यते कह कर व्याख्या की है–

इष्टदेव का जप ध्यान करने से मन की बिखरी हुई शक्तियाँ एकत्रित हो जाया करती है। भगवान श्री कृष्ण ने अपने भक्तों के सामने जप की प्रशंसा करते हुए उसको अपना स्वरूप बतलाया है। साधक को नाम जप के द्वारा समय आने पर भगवत दर्शन अवश्य होते हैं।

यदि गुरुदेव के पहले ही मन्त्र को जाग्रत कर लिया है, तो शिष्य के लिए आध्यात्मिक पथ पर तीव्र गति से आगे बढ़ना बहुत सुगम हो जाता है अन्यथा सफलता प्राप्ति के लिए काफी समय लग सकता है। यदि संस्कारी शिष्य को अपने गुरु से जाग्रत मन्त्र प्राप्त हो जाता है तो उसकी साधना का पचास प्रतिशत पहले ही पूरा हो गया होता है और साधना पर्याप्त सरल हो जाती है। इसलिए सर्वप्रथम साधक को अपने गुरुदेव के निर्देशानुसार सुप्त मन्त्र का जागरण करना चाहिए और उचित समय पर वह साधना के लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है परन्तु बहुत बार देखा जाता है कि जप करते रहने पर भी कोई प्रगति नहीं हो पाती है इसका क्या कारण है उसने दिन रात नाम तो जपा परन्तु उसका मन निरन्तर नाम, कीर्ति, यश, प्रतिष्ठा, अधिकार, सम्पत्ति, मान, बड़ाई, आदि जगत के भोगों में रस लेता रहता है। इसी से यथार्थ प्रगति नहीं हो पाती है। विषयों में फँसे मन को उनसे छुड़ाना पड़ेगा और तीव्र जप के मार्ग पर आगे बढ़ना होगा। मशीन की तरह किये गये जप से एवं बिना इष्टदेव में मन लगाये साधक को सफलता नहीं मिल सकती है। पवित्र नाम को जपते समय भी साधक का मन बाजार, ऑफिस अन्य जगह भटकता रहता है। इस तरह शक्ति का अपव्यय होता है और साधक को असफलता ही हाथ लगती है।

मानस जप की ओर बढ़ना है। इस तरह करने पर वह आध्यात्मिक मार्ग पर प्रगति करता है और उसका आन्तरिक जप दिन रात स्वतः ही होने लगता है और अन्त में उस परम वस्तु को प्राप्त कर ही लेता है, जिसकी तलाश में वह युगों से भटक रहा था। अनेक सरलतम और निश्चित मार्गों में जप अपना विशेष स्थान रखता है। यह कोई मन गढ़ंत कल्पना नहीं है।

यह परम सत्य है कि सच्ची भावना और श्रद्धा से किये गये जप से साधक ईश्वर की प्राप्ति के साथ–साथ अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

इसलिये जप विज्ञान को भगवत दर्शन की प्राप्ति और आत्म उन्नति के रूप में स्वीकृति एवं मान्यता प्राप्त हुई।

साधक को चाहिए कि वह गुरुदेव के दिशा निर्देशों के अनुसार जप विज्ञान का अभ्यास करे। परम लक्ष्य की प्राप्ति का यही सरलतम मार्ग है तभी हम गुरुदेव के प्रिय शिष्य कहलाने लायक होंगे।

ॐ जय–गुरुदेव ॐ

# योग–आसन

## वातायनासन

### विधि

इस आसन के करने की विधि वृक्षासन से बिल्कुल मिलती जुलती ही है। केवल इतना अन्तर है कि अपना दाहिना पैर जो मोड़ कर बायें पैर की जंघा पर जमा कर रखा हुआ है, उसके घुटने को नीचे को बढ़ा कर बायें पैर के ग्रन्थी स्थान (गुल्फ) टकनों पर जमा कर हाथ जोड़ कर खड़े रहें। बायाँ पैर घुटने में से थोड़ा झुक जायेगा। इस आसन को वातायन आसन कहते हैं।

**समय**– साधारण वृक्षासन की ही तरह। मिनट से आरम्भ करके 2 या 3 मिनट तक पैरों को बदल–बदल कर, कर लेना चाहिए।

**लाभ**– आरोग्यता बढ़ती है। वायु निस्तरण होकर कोष्ठबद्धता में लाभदायक है। वीराना भाव पुष्ट होते हैं।

❀❀❀

# क्यों ना खाएं प्याज और लहसुन

**लेखक मनमोहन कृष्ण त्रिखा**

प्याज और लहसुन को हमारे शास्त्रों में तामसिक माना गया है जिस के खाने से तामसिक वृत्तियाँ जैसे आलस्य, निद्रा आदि उत्पन्न होती हैं। आलस्य एवं निद्रा की स्थिति में व्यक्ति कोई भी कार्य पूरे मनोयोग से नहीं कर पाता। मन को एकाग्र करने की क्षमता/शक्ति ही समाप्त हो जाती है, मानो जैसे दीमाग ने काम करना ही बंद कर दिया हो। यहाँ से प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ऐसा क्यों होता है, क्या इस के पीछे कोई वैज्ञानिक तथ्य है जिसके कारण हमारे शास्त्र इन्हें तामसिक कहते हैं और खाने को वर्जित मानते हैं। आइये इस का उत्तर ढूँढने के लिए हम एक जर्मनी के वैज्ञानिक के लेख को देखते हैं - How Onion and Garlic Ruined My Research-Goutam paul sept.21, 2012 (last revised: Dec.5, 2012), Aachen, Germany. इस लेख में गोटम पाल, जर्मनी के वैज्ञानिक एवं शोधकर्ता, ने बताया है कि किस प्रकार से प्याज के सेवन ने उनके परीक्षण एवं रिसर्च के कार्य को बर्बाद कर दिया। वास्तव में वैज्ञानिक गोटम पाल प्याज और लहसुन नहीं खाते थे लेकिन जब वे परीक्षण के लिए अपने शहर से बाहर गए, तो वहाँ उन्होंने प्याज का सेवन कर लिया और उसका असर यह हुआ कि उन्होंने अपने परीक्षण में बहुत भारी गलतियाँ कर डाली। इसके पश्चात उन्होंने प्याज में विद्यमान रसायनिक तत्वों का अध्ययन किया और पाया कि प्याज और लहसुन दोनों में Sulphoxide नाम का एक मिश्रण होता है जिसमें नर्व फिल्टर होता है, जो मन को एकाग्र नहीं होने देता। डाक्टर रोबर्ट (बॉब) सी. बैक के अनुसार लहसुन में एक विषैला तत्व sulphone hydroxyl होता है जो दिमाग के सेल्स के लिए जहर का काम करता है और हमारे दिमाग की लहरों के तालमेल को बिगाड़ देता है। उन्होंने कुछ लोगों पर इसका परीक्षण किया और पाया कि जन लोगों ने लहसुन का प्रयोग किया था उनका मन एकाग्र नहीं हो पा रहा था। वे कम्प्यूटर पर अपना मन एकाग्र नहीं कर पा रहे थे। और जब 2-3 दिन के लिए उनका लहसुन का सेवन बंद कर दिया तो वही कार्य उन्हीं लोगों ने कुशलता एवं एकाग्रता के साथ किया। डॉक्टर रॉबर्ट बैक ने लिखा कि इसीलिए उनका फ्लाइट इन्चार्ज हर महीने उनको चेतावनी देता था कि वे फ्लाइट के 72 घंटे पहले लहसुन का सेवन ना करें।

निष्कर्ष यह निकला कि प्याज एवं लहसुन के सेवन से मन एवं मन की एकाग्रता प्रभावित होती है। इसीलिए, कई देशों की संस्कृतियों, एवं संत समाज ने इसका सेवन वर्जित कर दिया है। हमारे देश में भी वैष्णव, जैन एवं बुद्धिस्ट इसका सेवन नहीं करते।

निष्कर्ष यह निकला कि हमारे ऋषि मुनि जो प्याज और लहसुन को तामसिक कहते थे उसके पीछे वैज्ञानिक कारण ही था।

योग साधकों के लिए प्याज और लहसुन का प्रयोग सर्वथा वर्जित है। ❀❀❀

# अमृतकण

येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च।
तान् सेवेत: समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी॥

(वन. 1/26)

जिनकी विद्या, कुल और कर्म—ये तीनों शुद्ध हों, उन साधु पुरुषों की सेवा में रहे। उनके साथ बैठना, उत्तम शास्त्रों के स्वाध्याय से भी श्रेष्ठ है।

• • •

न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः॥

(किष्किन्धा. 64/9)

मन को विषादग्रस्त नहीं बनाना चाहिये, विषाद में बहुत बड़ा दोष है। जैसे क्रोध से भरा हुआ सर्प बालक को डस जाता है, वैसे ही विषाद पुरुष का नाश कर डालता है।

• • •

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

(मुण्डक 2/2/8)

कार्य-कारणरूप परात्पर ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर हृदय की अविद्यारूप ग्रन्थि टूट जाती है, समस्त संशय-सन्देह कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

• • •

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति॥

(श्रीमद्भागवत 3/29/22)

जो अभिमानी और भेददर्शी है, जिसने सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति वैर बाँध रखा है, अतएव जो दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामी परमात्मा से द्वेष रखता है, उसके मन को कभी शान्ति नहीं मिलती।

• • •

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20 AUGUST 2018

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

बोदाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

______________________

______________________

कनकमपि रहस्यवेक्ष्य बुद्धया तृणमिव यः समवैति वै परस्वम्।
भवति च भगवत्यनन्यचेताः पुरुषवरं तमवेहि विष्णुभक्तम्।।

जो एकान्त में पड़े हुए दूसरे के स्वर्ण को देखकर भी उसे अपनी बुद्धि के द्वारा तृण के समान समझता है और निरन्तर भगवान् का अनन्य भाव से चिन्तन करता है उस पर श्रेष्ठ को तुम विष्णु का भक्त जानो।